वर्ष 14 **अंक 2** **अगस्त 2007**

प्रमुख आलेख

रमेशधर द्विवेदी और अंजना त्रिपाठी
सर्व शिक्षा अभियान एवं शिक्षा की गुणवत्ता

सुमित्रा सिंह
वर्तमान परिवेश में मानवीय, सामाजिक एवं स्थिरतापूर्ण विकास की अवधारणा

भरत टॉक
सरकारी, निजी अनुदानित तथा निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव का तुलनात्मक अध्ययन

महेश कुमार मुछाल
माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की पर्यावरण संरक्षण हेतु जागरूकता का अध्ययन

अन्य स्थाई स्तंभ

परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक–आर्थिक संदर्भ

संरक्षक

वेद प्रकाश

कुलपति, न्यूपा

संपादकीय सलाहकार मंडल

सोमदत्त दीक्षित

बी.सी. मेहता

श्री प्रकाश

अमरजीत सिन्हा

चांद किरण सलूजा

संपादक मंडल

जांध्याला बी. जी. तिलक

अरुण सी. मेहता

नलिनी जुनेजा

अकादमिक संपादक

एस.एम.आई.ए. जैदी

संपादक

सुभाष शर्मा

संपादन सहयोग

मनोज गौड़

उप प्रकाशन अधिकारी

प्रमोद रावत

प्रकाशन सहायक

अमित सिंघल

मानचित्रण

पी.एन. त्यागी

परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) की चतुर्मासी हिंदी पत्रिका है। यह वर्ष के अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में प्रकाशित की जाती है। संपादकीय विवरण के लिए कृपया आवरण (iii) देखें।

परिप्रेक्ष्य में प्रकाशित लेखों और अन्य सामग्री में व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार हैं। न्यूपा की नीतियों और विचारों से उनका कोई संबंध नहीं है।

परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 14, अंक 2, अगस्त 2007

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2007

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में होता है। इसके समूल्य प्रकाशन की योजना विचाराधीन है, इसलिए इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह पत्रिका न्यूपा वेबसाइट - www.nuepa.org पर भी नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बच्चन सिंह, बी-275, अवन्तिका, रोहिणी से. 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसैट होकर अनिल आफसेट एण्ड पैकेजिंग प्रा. लि. जवाहर नगर, नई दिल्ली, में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 2, अगस्त 2007

विषय सूची

आलेख

रमेशधर द्विवेदी और अंजना त्रिपाठी
सर्व शिक्षा अभियान एवं शिक्षा की गुणवत्ता 1

सुमित्रा सिंह
वर्तमान परिवेश में मानवीय, सामाजिक एवं स्थिरतापूर्ण विकास की अवधारणा 19

भरत टॉक
सरकारी, निजी अनुदानित तथा निजी गैर–अनुदानित विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव का तुलनात्मक अध्ययन 25

महेश कुमार मुछाल
माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की पर्यावरण संरक्षण हेतु जागरूकता का अध्ययन 39

सरस्वती अग्रवाल और रश्मि शुक्ला
हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृति का तुलनात्मक अध्ययन 55

शोध टिप्पणी / संवाद

दामोदर जैन
प्रारंभिक शिक्षा में गुणवत्ता सुधार के संदर्भ में शिक्षक, समाज और शासन की भूमिका 67

नरेश कुमार
अशक्त बालकों के समग्र विकास में अभिभावकों व शिक्षकों की भूमिका 75

बृजेश कुमार पाण्डेय
मूल्य परक शिक्षा के संदर्भ में विद्यार्थियों के दृष्टिकोण का सर्वेक्षण 81

कल्पना शर्मा, रीतेश कुमार और निशिथ चन्द्र श्रीवास्तव
दोपहर का भोजन कार्यक्रम एवं प्राथमिक शिक्षा 91

अवधेश कुमार यादव
सरकारी तथा गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन 103

सुशील कुमार राय और श्रुति आनन्द
सूचना एवं संचार तकनीक आधारित शिक्षण में अध्यापक सशक्तीकरण 109

प्रेम शंकर सोनकर
शिक्षक-प्रशिक्षकों में इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यम के प्रति जागरूकता 117

नारायण प्रसाद उनियाल
उत्तराखण्ड में विद्यालयी शिक्षा की वर्तमान स्थिति 127

चिंतक और चिंतन

शारदा कुमारी
दौलत सिंह कोठारी का शिक्षा दर्शन 139

समीक्षा लेख

अजय कुमार मिश्र
राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन का इतिहास 145

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 2, अगस्त 2007

सर्व शिक्षा अभियान एवं शिक्षा की गुणवत्ता

रमेशधर द्विवेदी* और अजंना त्रिपाठी**

सारांश

जीवनोपयोगी एवं गुणवत्तापरक सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा आज सम्पूर्ण विश्व के सामने एक ज्वलन्त प्रश्न है। इसी संदर्भ में हमने उत्तरप्रदेश के वाराणसी जनपद के 25 प्राथमिक विद्यालयों से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर जनपद के प्राथमिक विद्यालयों की गुणवत्ता के स्तर का अध्ययन करने का प्रयास किया है। विद्यालयों की समग्र गुणवत्ता का मूल्यांकन करने पर वाराणसी जनपद के 8 प्रतिशत विद्यालय उत्तम गुणवत्ता के, 76 प्रतिशत विद्यालय सामान्य गुणवत्ता के एवं 16 प्रतिशत विद्यालय खराब गुणवत्ता के पाये गये। निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि वाराणसी जनपद के प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति प्रदेश के अन्य विद्यालयों की तुलना में काफी ठीक होने क बावजूद सर्व शिक्षा अभियान के मानकों के अनुरूप नहीं हैं।

शिक्षा किसी राष्ट्र के विकास की अनिवार्य शर्त होती है। अशिक्षित नागरिकों के साथ कोई भी राष्ट्र विकसित देशों की कतार में खड़े होने की कल्पना भी नहीं कर सकता है। शिक्षा और विकास के इस संबंध को ध्यान में रखकर ही विगत दो गशकों से सम्पूर्ण विश्व का ध्यान शिक्षा, मुख्यत: प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण की तरफ केंन्द्रित है। शिक्ष की मूलभूत आवश्यकताओं को वर्ष 2000 तक पूरा करने की रूपरेखा मार्च 1990 में जोमेतियन, थाइलैंड में आयोजित सबके लिए शिक्षा संबंधी विश्व सम्मेलन में सभी सदस्य राष्ट्रों एवं अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों द्वारा स्वीकार की गई थी। शिक्षा के बारे में स्वीकृत परमलक्ष्य सभी बच्चों, युवाओं और प्रौढ़ों के लिए ज्ञानार्जन की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करना है। ये आवश्यकताएं इस प्रकार विनिर्दिष्ट है: (क)

* वरिष्ठ प्रवक्ता, शिक्षाशास्त्र विभाग, उदय प्रताप स्वायत्तशासी महाविद्यालय, वाराणसी
** शोध छात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग, उदय प्रताप स्वायत्तशासी महाविद्यालय, वाराणसी

साक्षरता, मौखिक अभिव्यक्ति, अंकज्ञान और समस्या समाधान जैसे ज्ञानार्जन के अनिवार्य कौशल, और (ख)ज्ञान, कौशल, मूल्य और मनोवृत्ति जैसे ज्ञानार्जन की विषय वस्तु। ज्ञानार्जन हेतु इन आवश्यकताओं को पुरा करने के लिए सबके लिए शिक्षा घोषणा पत्र में बुनियादी शिक्षा के व्यापक स्वरूप को ध्यान में रखा गया, जिसमें औपचारिक विद्यालयी शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम और मुक्त शिक्षा व्यवस्था शामिल हैं। ये सभी माध्यम बच्चों और बड़ों तक बुनियादी शिक्षा पहुंचाने के प्रयास हैं। भारत ने भी जोमेतिएन घोषणा–पत्र पर हस्ताक्षर किए थे और तत्काल ही सबके लिए शिक्षा की इन प्रतिबद्धताओं पर काम करना शुरू कर दिया।

यद्यपि प्रारंम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के उद्देश्य को भारत में बहुत पहले वर्ष 1950 में ही एक राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया था तथापि विगत 16 वर्षों में भारतीय प्राथमिक शिक्षा के इतिहास में इसने निश्चित रूप से सकारात्मक छाप छोड़ी है। भारतीय संविधान में चौदह वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को संतोषजनक, गुणवत्तापरक नि:शुल्क शिक्षा प्रदान करने के काम को, 1986 में बनाई गई और 1992 में संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अंतर्गत ठोस कार्ययोजना के साथ प्रमुखत: उच्च प्राथमिकता मिली। हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति– 1986 में प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में कहा गया है कि 21वीं सदी में प्रवेश करने के पूर्व 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को संतोषजनक गुणवत्ता वाली नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाए इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक राष्ट्रीय मिशन स्थापित किया जाना चाहिए। जोमेतिएन विश्व घोषणा पत्र (1990) ने नि:संदेह सभी बच्चों को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा देने के लक्ष्य को प्राप्त करने की राष्ट्रीय प्रतिबद्धता को बल प्रदान किया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 एवं जोमेतिएन विश्व घोषणा पत्र (1990) के परिप्रेक्ष्य में प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण की दिशा में अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये गये, जिनमें प्रमुख हैं:

1. आपरेशन ब्लैक बोर्ड
2. जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम
3. मध्याह्न भोजन योजना
4. शिक्षाकर्मी योजना
5. लोक जुम्बिश परियोजना

6. शिक्षा गारंटी योजना
7. वैकल्पिक एवं नवाचारी शिक्षा
8. जनशाला

पिछली सदी के अन्तिम दशक में शिक्षा के सार्वभौमीकरण के संदर्भ में इस तरह के कार्यक्रम विश्व के अनेक देशों में चलाये गए। इन कार्यक्रमों की प्रगति की समीक्षा एवं आगे के लिए कार्य योजना तैयार करने हेतु एक विश्व सम्मेलन डकार (सेनेगल) में अप्रैल 2000 में आयोजित किया गया। विश्व शिक्षा फोरम के नाम से विख्यात इस सम्मेलन में एक कार्य योजना तैयार की गयी जो डकार कार्य योजना–2000 (Dakar Framework 2000) के नाम से विख्यात है। इस कार्य योजना में 'सबके लिए शिक्षा' हेतु निम्मालिखित छः लक्ष्य अंगीकृत किए गए:

1. विस्तृत शैशवकालीन देखभाल एवं शिक्षा विशेष रूप से अत्यन्त अभावग्रस्त एवं वंचित बच्चों के लिए शिक्षा का विस्तार एवं सुधार।
2. यह सुनिश्चित करना कि 2015 तक सभी बच्चे, विशेषकर लड़कियाँ,कठिन परिस्थितियों से पीड़ित बच्चे नृजातीय अल्पसंख्यक बच्चे गुणात्मक, मुफ्त एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को प्राप्त एवं पूरा करें।
3. यह सुनिश्चित करना कि सभी युवकों एवं प्रौढ़ों की अधिगम संबंधी आवश्यकताएं समुचित अधिगम तथा जीवन कौशल कार्यक्रमों के द्वारा समान रूप से पूरी हों।
4. 2015 तक प्रौढ़ साक्षरता के स्तरों में 50 प्रतिशत सुधार लाना, विशेषतया महिलाओं के लिए, तथा सभी प्रौढ़ों के लिए बुनियादी एवं सतत शिक्षा का समान रूप से प्रावधान करना।
5. 2005 तक प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा में लैंगिक विषमताओं को दूर करना तथा 2015 तक पूर्णतः लैंगिक समानता प्राप्त करना, विशेष रूप से यह सुनिश्चित करते हुए कि लड़कियाँ सम्पूर्ण तथा समान रूप से अच्छी गुणात्मक प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करें।
6. शिक्षा की गुणवत्ता के सभी पक्षों में सुधार तथा सबकी उत्कृष्टता सुनिश्चित

करना ताकि मान्य एवं मूल्यांकन योग्य अधिगम उपलब्धियाँ, विशेषतया साक्षरता, गणना तथा अनिवार्य जीवन कौशल सभी प्राप्त करें।

वर्ष 2000 में ही संयुक्त राष्ट्र की साधारण सभा में सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य (Millenium Development Goals) पर भी सहमति जताई गयी। इसमें भी डकार कार्य योजना के दो लक्ष्यों, सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा की प्राप्ति एवं प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा में लैंगिक विषमताएं दूर करना – को गरीबी दूर करने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में डकार के संयुक्त लक्ष्यों (2000) के अनुरूप, प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु 2001–2002 से हमारे देश में सर्व शिक्षा अभियान चलाया जा रहा है। यह अभियान राज्यों एवं केंद्र सरकार की भागीदारी से समयबद्ध समेकित प्रयास द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा को जन–जन तक पहुंचाने संबंधी चिर अभिलाषित लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में एक ऐतिहासिक प्रयास है। डकार कार्य योजना (2000) में निर्धारित सबके लिए शिक्षा हेतु वर्ष 2015 के लक्ष्य के विरूद्ध भारत में अति उत्साह में सर्व शिक्षा अभियान, जिससे देश के प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव लाने की अपेक्षा की गई है, के अन्तर्गत वर्ष 2010 तक ही 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के सभी बच्चों को संतोषजनक, नि:शुल्क, जीवनोपयोगी एवं गुणवत्तापरक प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इसी संदर्भ में सर्व शिक्षा अभियान के निम्नलिखित समयबद्ध लक्ष्य निर्धारित किए गए:

2002: देश के सभी जिलों तक कार्यक्रम पहुंचाना।

2003: सभी बच्चों को स्कूल, शिक्षा गांरटी केन्द्र, वैकल्पिक विद्यालयों या बैक –टू –स्कूल शिविरों में लाना।

2007: सभी बच्चों द्वारा पांच साल की शिक्षा सम्पन्न करना।

2010: सभी बच्चों द्वारा आठ साल की प्राथमिक शिक्षा सम्पन्न करना एवं उनका सम्पूर्ण प्रतिधारण।

उपर्युक्त से स्पष्ट होता है कि सर्व शिक्षा अभियान के तीन लक्ष्य – शत–प्रतिशत नामांकन, सम्पूर्ण ठहराव एवं सम्पूर्ण सम्प्राप्ति हैं। आज जबकि हम वर्ष 2007 में कदम

रख चुके हैं, 2007 के लक्ष्य से कोसों दूर हैं। ई.एफ.ए. - ग्लोबल मॉनीटरिंग रिपोर्ट (2007) ने भारत को अभियान की सफलता की दृष्टि से तीसरे वर्ग में रखा गया है। इस वर्ग में कुल उन्तीस देश हैं, जिनका ई.एफ.ए-विकास सूचकांक 0.80 से नीचे है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत के वार्षिक रिपोर्ट (2005-2006) के अनुसार यद्यपि स्कूल से बाहर छात्रों की संख्या घट रही है, लेकिन अभी 95 लाख बच्चे स्कूल से बाहर हैं। इन आंकड़ों से यह परिलक्षित है कि वर्ष 2015 तक भी सर्व शिक्षा अभियान के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए ऊपर से नीचे हर स्तर पर दृढ़ संकल्प, जिम्मेदारी एवं जवाबदेही की अत्यंत आवश्यकता है।

शिक्षा की बढ़ती हुई सुलभता का समाज तथा व्यक्तियों पर तभी लाभकारी प्रभाव पड़ेगा जब शिक्षा अधिक गुणवत्ताप्रद होगी। गुणवत्ता एक बहुमुखी अवधारणा है। शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता अधिगम की व्यवस्था एवं प्रबंधन, अधिगम का विषय, अधिगम का स्तर, प्रतिफल एवं अधिगम पर्यावरण निर्माण आदि आदि विषयों से मिलकर बनी है। ई.एफ.ए. ग्लोबल मॉनीटरिंग रिपोर्ट (2005) के अनुसार 'शिक्षा में गुणवत्ता' को मुख्यत:दो बिन्दुओं के आधार पर परिभाषित किया जा सकता है- पहला, शिक्षार्थी का संज्ञानात्मक विकास, पूरी शिक्षा व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य हो तथा दूसरा सकारात्मक नागरिक मूल्यों के साथ-साथ सृजनता एवं संवेदनशीलता का भी विकास हो।

शिक्षा की गुणवत्ता को परिभाषित करना आसान नहीं है फिर भी इसे आगामी की तालिका में दिया गया प्रारूप शैक्षिक गुणवत्ता के आकलन में सहायक हो सकता है।

इस परिप्रेक्ष्य में प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के साथ ही जीवनोपयोगी गुणवत्ताप्रद शिक्षा समय की मांग है। यदि अभिभावकों का यह मानना हो कि जो कुछ भी बच्चों को सिखाया जा रहा है, वह जीवन कौशलों के अनुकूल नहीं है तो वे अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेंजेगे, चाहे इसके लिए कितने भी अवसर क्यों न हों। शायद यही वजह है कि आज लगभग प्रत्येक 1-11/2 किमी. पर प्राथमिक विद्यालय होने के बावजूद सम्पन्न तबके के अधिकाधिक बच्चे प्राइवेट विद्यालयों में पढ़ने को प्राथमिकता देते हैं।

शिक्षा की गुणवत्ता का आकलन करने हेतु योगदान -प्रक्रम-प्रतिफल प्रारूप

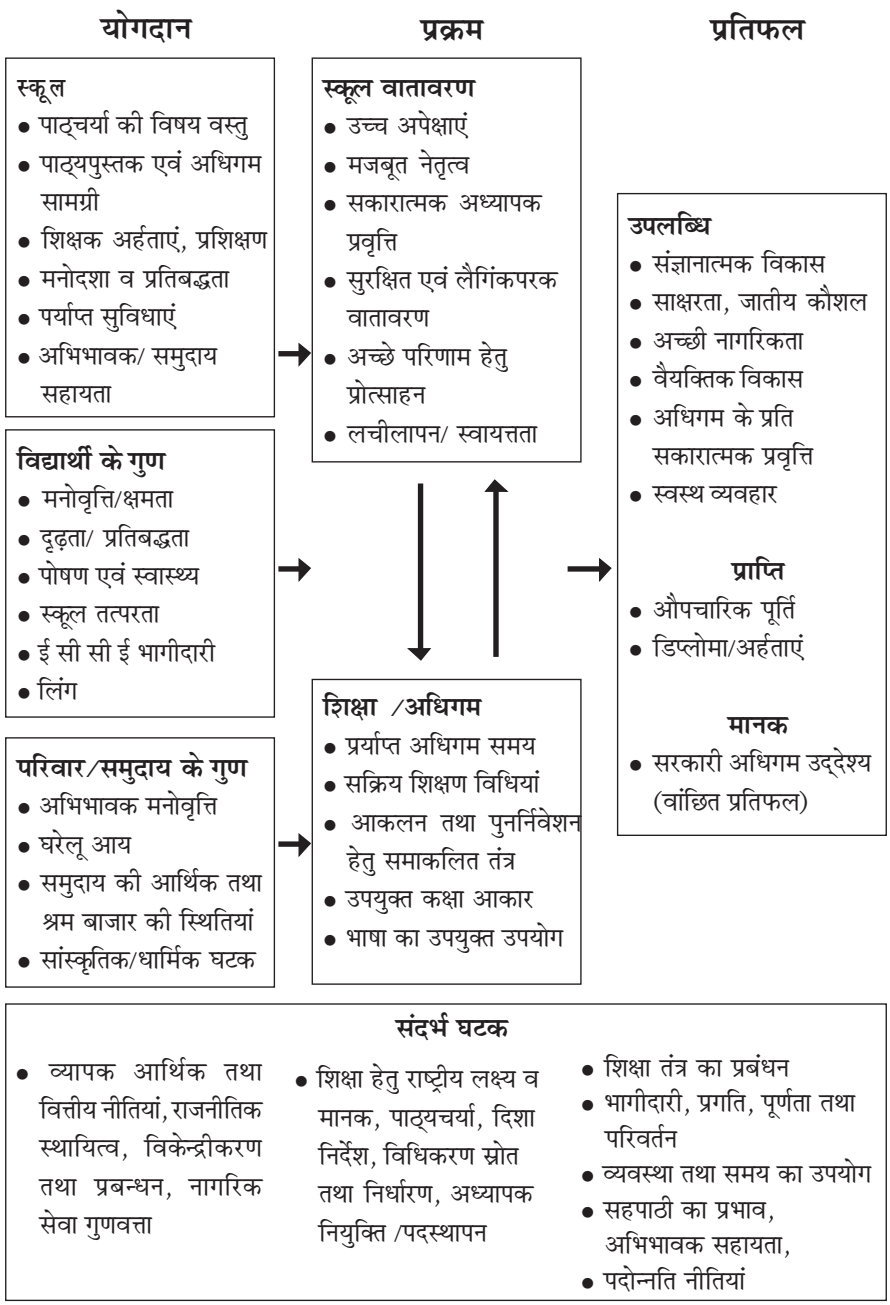

इसी संदर्भ में हमने उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद के 25 प्राथमिक विद्यालयों से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर जनपद के प्राथमिक विद्यालयों की गुणवत्ता के स्तर का अध्ययन करने का प्रयास किया है। प्रस्तुत अध्ययन में वाराणसी जनपद के समस्त विकास खण्डों से यादृच्छिक विधि से चुने गए 25 विद्यालयों एवं उनमें पढ़ने वाले कक्षा-4 के 500 विद्यार्थियों को न्यार्दश के रूप में चुना गया है।

शोध के उद्देश्य- प्रस्तुत शोध कार्य के निम्नलिखित उद्देश्य थे-

1. प्राथमिक विद्यालयों की गुणवत्ता का विद्यालयों के भौतिक संसाधन, मानवीय संसाधन, विद्यालय प्रबंध एवं विद्यालय समुदाय संबंध के आधार पर आकलन करना।
2. विद्यालयों का उनकी समग गुणवत्ता के आधार पर वर्गीकरण।

उपकरण- प्रस्तुत शोध हेतु निम्नलिखित 5 उपकरणों का प्रयोग किया गया। ये सभी उपकरण शोधकर्ताओं द्वारा स्वयं निर्मित किये गये थे:

1. भौतिक संसाधन उपलब्धता सूची
2. मानव संसाधन सूची पत्र
3. विद्यार्थी साक्षात्कार सूची पत्र
4. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया अवलोकन तालिका
5. विद्यालय प्रबंध प्रश्नावली

प्रदत्त संग्रह एवं विश्लेषण

अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करने पर जनपद के प्राथमिक विद्यालयों के गुणवत्ता की स्थिति निम्नवत्त है:

नामांकन एवं शिक्षण छात्र अनुपात: अध्ययन के दौरान हमने विद्यालयों के नामांकन की स्थिति एवं शिक्षक छात्र अनुपात की वस्तुस्थिति देखने का प्रयास किया। जनपद के विभिन्न विकास खण्ड स्थित विद्यालयों में छात्रों का नामांकन एवं छात्र-शिक्षक अनुपात की स्थिति तालिका-1 में प्रदर्शित की गयी है।

तालिका-1

विकास खण्डवार विद्यालयों में नामांकन, अध्यापकों की संख्या एवं छात्र शिक्षक अनुपात की स्थिति

विकास खण्ड	नामांकन						अध्यापकों की संख्या					छात्र-शिक्षक अनुपात				
	5 तक	151-250	251-350	351-450	451-600	>600	5 तक	6 -8	9 -11	12 -15	> 15	18-25	26-35	36-45	45-55	>55
आराजिला इन्स (4)			1	1		1	1	0	2	2	1	1	1		1	1
काशी विद्यापीठ (3)	1		1	1	1			2	1			1	1	1		
पिण्डरा (3)					2	1		1		2	1			2	1	
सेवापुरी (3)				1	2			1	1	1			1	2		
बड़ागांव (3)						1	2	2		1	1				1	2
हरहुआ (3)	1		1			1	1	3				1			1	1
चोलापुर (3)		1			1	1	1	2						1	1	1
चिरईगांव (3)			2	1				1	1	1		2	1			
योग (25)	**2**	**1**	**5**	**4**	**6**	**5**	**5**	**12**	**5**	**7**	**3**	**5**	**4**	**6**	**5**	**5**

तालिका 1 से स्पष्ट है कि 25 प्राथमिक विद्यालयों के न्यादर्श में छात्रों की नामांकन संख्या 125 से कम से लेकर 600 से अधिक तक वितरित है। यहां यह भी ध्यान देने योग्य है कि शहर के नजदीकी विद्यालयों में, शहर से दूर के विद्यालयों की अपेक्षा छात्र नामांकन कम है। सम्भवत: ऐसा शहर के नजदीक प्राइवेट स्कूलों की अधिक संख्या के कारण है। सुविधाओं की गुणवत्ता छात्रों के नामांकन के आधार पर ही निर्धारित होती है। इस संदर्भ में छात्र –अध्यापक अनुपात बहुत ही महत्वपूर्ण घटक है। अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि वाराणसी जनपद में शिक्षक–छात्र अनुपात का वितरण बहुत ही असमान है और इसका फैलाव 18:1 से 72:1 तक पाया गया है। तालिका–1 से यह स्पष्ट है कि शहर से नजदीक 4 विकास खण्डों के 5 विद्यालयों (20%)में यह अनुपात 25:1 से भी कम है जबकि 5 विकास खण्डों के 10 विद्यालयों (40%) में 46:1 से भी अधिक । वाराणसी जनपद के 25 में से केवल 6 (24%) विद्यालयों में छात्र–शिक्षक अनुपात 36:1 से 45:1 की सीमा में है, जो कि सरकारी मानक 40:1 के करीब है। ये आंकड़े दर्शाते हैं कि शिक्षकों की नियुक्ति छात्रों की नामांकन संख्या को ध्यान में रखकर नहीं की जाती है। यदि हम प्रदेश स्तर पर इन सूचकों को देखें तो पूरे प्रदेश में प्रति विद्यालय अध्यापकों की औसत संख्या 3.26 और छात्र शिक्षक अनुपात 57:1 है। इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि वाराणसी जनपद प्रति विद्यालय अध्यापकों की उपलब्धता एवं छात्र शिक्षक अनुपात की दृष्टि से पूरे प्रदेश के मुकाबले काफी संतोषजनक स्थिति में है। समूचे प्रदेश में 16 प्रतिशत विद्यालय ऐसे हैं जहां छात्र–शिक्षक अनुपात 100 से अधिसक है परंतु ऐसी स्थिति वाराणसी जनपद के किसी विद्यालय में नहीं पायी गयी है।

भौतिक संसाधन: विद्यालय के भौतिक संसाधनों का बच्चों के अधिगम वातावरण तथा सम्पूर्ण विद्यालयी गुणवत्ता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। मूलत: सभी प्राथमिक विद्यालय एक होने के बावजूद उनके संसाधनों के वितरण में कई विषमताएं दृष्टिगोचर होती हैं। स्वस्थ भौतिक वातावरण केवल प्रभावी पाठ्यक्रम क्रियाकलापों के लिए नहीं, बल्कि बच्चे एवं शिक्षक, दोनों के स्वस्थ विकास के लिए भी आवश्यक है। भवन, पेयजल, शौचालय, खेल का मैदान एवं खेल सामग्री, श्यामपट्ट, शिक्षण–अधिगम सामग्री आदि की विषमतायें विद्यालय की शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं।

तालिका-2

विकास खण्डवार विद्यालयों में सुविधाओं की स्थिति

	सुविधाएं													
	पेयजल की व्यवस्था			शौचालय		खेल का मैदान			बैठने के लिए टाट-पट्टी			सफाई व्यवस्था		
विकास खण्ड	उत्तम	सामान्य	खराब	चालू	बन्द	उत्तम	सामान्य	खराब	उत्तम	सामान्य	खराब	उत्तम	सामान्य	खराब
आराजीलाइंस (4)	1	2	1	1	3	1	1	2	3		1		4	
काशी विद्यापीठ (3)	1		2		3			3	1	2		1	1	1
पिण्डरा (3)			3		3	2	1		1		2	1	2	
सेवापुरी (3)			3		3			3	3			1	2	
बड़ागांव (3)			3	1	2	1	1	1		1	2	2	1	
हरहुआ (3)	1	1	1	1	2	1		2	1	2		1	2	
चोलापुर (3)	1		2	1	2			3	1	1	1	1	1	1
चिरईगांव (3)		2	1		3	1		2	2	1		1	2	
योग (25)	**4**	**5**	**16**	**4**	**21**	**6**	**3**	**16**	**12**	**7**	**6**	**8**	**15**	**2**

तालिका-2 विद्यालय के भौतिक सुविधाओं, जैसे- पेयजल, शौचालय, खेल का मैदान, बैठने एवं विद्यालय की सफाई संबंधी आंकड़े प्रदर्शित करता है जबकि तालिका-3 विद्यालय की शैक्षिक सुविधाओं, जैसे- श्यामपट्ट तथा शिक्षण अधिगम सामग्री संबंधी आंकड़े प्रदशिर्त करता है।

जब हम 6-14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों के स्कूलों की गुणवत्ता का अध्ययन कर रहे हैं तब उचित पेयजल एवं शौचालय की व्यवस्था अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। प्रति 150 बच्चों पर एक हैण्डपम्प का मानक रखने पर वाराणसी जनपद के 16 प्रतिशत विद्यालय उत्तम, 20 प्रतिशत विद्यालय सामान्य तथा 64 प्रतिशत विद्यालयों में पेयजल की खराब सुविधा है। तालिका-2 से यह भी स्पष्ट है कि वाराणसी जनपद के 25 में से 21 (84 प्रतिशत) विद्यालयों में शौचालय बच्चों के लिए चालू अवस्था में नहीं है। यह अत्यन्त असंतोषजनक एवं खेदपूर्ण स्थिति है। खेल का मैदान बच्चों के समग्र विकास के लिए एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। 6 विद्यालयों में मैदान उत्तम, 3 विद्यालयों में सामान्य तथा 16 विद्यालयों में नहीं की स्थिति में है। ऐसी स्थिति में बच्चों के स्वास्थ्य एवं समग्र विकास की कल्पना सिर्फ योजनाओं में की जा सकती है। बच्चों को बैठने के लिए सरकार द्वारा समुचित सुविधा उपलब्ध कराये जाने के बावजूद 24 प्रतिशत विद्यालयों में टाट-पट्टी खराब स्थिति में है। कुछ विद्यालयों में बच्चे आज भी अपने घरों से बैठने के लिए बोरा इत्यादि लाते हैं। तथापि 76 प्रतिशत विद्यालयों में बैठने की उचित व्यवस्था है। 90 प्रतिशत विद्यालय में सफाई की व्यवस्था उत्तम और सामान्य श्रेणी में है। प्रदेश स्तर पर इन सुविधाओं के संदर्भ में हम पाते हैं कि मात्र 94 प्रतिशत विद्यालयों में पेयजल की व्यवस्था उपलब्ध है। शौचालय की सुविधा 80 प्रतिशत विद्यालयों में ही है। इन आंकड़ों के आधार पर भी जनपद के विद्यालय अच्छी स्थिति में कहे जा सकते हैं।

पठन-पाठन की सुविधायें: उपरोक्त भौतिक सुविधाओं के अतिरिक्त, कक्षा-कक्ष में श्यामपट्ट एवं शिक्षण-अधिगम सामग्री के उपयोग की स्थिति किसी भी विद्यालय की गुणवत्ता के महत्वपूर्ण घटक हैं।

तालिका-3 से स्पष्ट है 50 प्रतिशत से अधिक स्कूलों के श्यामपट्ट मानक के अनुसार हैं और प्रयोग किये जाने योग्य हैं जबकि लगभग 45 प्रतिशत विद्यालयों में श्यामपट्ट

तालिका-3

विकास खण्डवार विद्यालयों में पठन-पाठन सुविधाओं की स्थिति

विकास खण्ड	सुविधाएं				
	श्यामपट्ट			शिक्षण अधिगम सामग्री	
	उत्तम	सामान्य	खराब	उपयोग	अनुपयोग
आराजीलाइंस (4)	1		3	3	1
काशी विद्यापीठ (3)		1	2	1	2
पिण्डरा (3)		2	1	0	3
सेवापुरी (3)	1	1	1	0	3
बड़ागांव (3)		1	2	0	3
हरहुआ (3)		3		1	2
चोलापुर (3)		1	2	0	3
चिरईगांव (3)		3		0	3
योग (25)	**02**	**12**	**11**	**5**	**20**

की गुणवत्ता अत्यन्त खराब है। सरकार द्वारा प्रत्येक प्राथमिक शिक्षक को रु. 500 प्रति वर्ष, शिक्षण अधिगम सामग्री के लिए दिया जाता है तथापि शिक्षण अधिगम सामग्री का कक्षा में प्रयोग लगभग नहीं किया जा रहा है। 80 प्रतिशत विद्यालयों के विद्यार्थियों ने केवल पुस्तक से अपने अध्यापकों द्वारा पढ़ाये जाने की बात स्वीकारी। यदि किसी अध्यापक के पास कुछ सामग्री है भी तो वह आलमारी में बंद है। केवल 20 प्रतिशत विद्यालयों के शिक्षकों द्वारा कुछ सीमा तक शिक्षण अधिगम सामग्री के प्रयोग से पाठ्यक्रम को पढ़ाया जाता है।

अध्यापकों की योग्यता एवं अनुभव: जब भी गुणवत्ता का प्रश्न उठाया जाता है, अनिवार्य रूप से शिक्षकों, उनकी क्षमता एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया तथा उनकी अभिप्रेरणा की तरफ हमारा ध्यान जाता है। प्रस्तुत शोध में हमने अध्यापकों से संबंधित विभिन्न आंकड़े यथा- लिंग, शैक्षिक योग्यता, व्यावसायिक प्रशिक्षण, योग्यता तथा अनुभव के आंकड़ों को वर्गीकृत करने का प्रयास किया है।

तालिका-4

विकास खण्डवार विद्यालयों में अध्यापकों की योग्यता, अनुभव आदि का विवरण

विकास खण्ड	लिंग		शैक्षणिक योग्यता				व्यावसायिक प्रशिक्षण			अनुभव (वर्ष)		
	पुरुष	महिला	इण्टर	स्नातक	परास्नातक	उच्चतर योग्यता	बीटीसी	बी.एड.	शिक्षा	<2	2–	>6
आराजीलाइन्स (4)	27	19	9	12	25	7	11	27	8	19	14	13
काशी विद्यापीठ (3)	4	19	6	7	10	1	12	6	5		9	14
पिण्डरा (3)	16	20	8	6	22	3	8	23	5	18	10	8
सेवापुरी (3)	12	16	6	6	16		8	16	4	13	9	6
बड़ागांव (3)	20	8	3	3	22		4	19	5	10	9	9
हरहुआ (3)	9	11	4	8	8	1	9	6	5	6	6	8
चोलापुर (3)	12	5	6	6	5	2	5	7	5	5	6	6
चिरईगांव (3)	13	18	6	12	13	1	12	13	6	14	7	10
योग (25)	**113**	**116**	**48**	**60**	**121**	**15**	**69**	**117**	**43**	**45**	**10**	**74**

तालिका-4 से स्पष्ट है कि न्यादर्श के विद्यालयों में महिला एवं पुरुष अध्यापकों की संख्या क्रमशः 113 तथा 116 है, जो सरकारी नीति के अनुसार लगभग 50:50 के अनुपात में है। अध्यापकों की शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं सेवा समय की विद्यालय की शैक्षिक गुणवत्ता पर महत्वपूर्ण असर पड़ता है। 225 शिक्षकों के न्यादर्श के आधार पर वाराणसी जनपद में 20.96 प्रतिशत शिक्षकों की उच्चतम शैक्षणिक योग्यता उच्चतर माध्यमिक स्तर के 26.20 प्रतिशत शिक्षक स्नातक स्तर तक तथा 52.84 प्रतिशत शिक्षक परास्नातक स्तर है। 6.55 प्रतिशत शिक्षक अतिरिक्त उच्च योग्यता भी रखते हैं। न्यादर्श में चुने गये सभी शिक्षक यद्यपि प्रशिक्षित हैं फिर भी उनके प्रशिक्षण की प्रकृति में विभिन्नता है। 30 प्रतिशत शिक्षक बी.टी.सी., 51 प्रतिशत शिक्षक विशिष्ट बी.टी.सी. तथा 19 प्रतिशत शिक्षामित्र का प्रशिक्षण प्राप्त किये हुए हैं। इसके अलावा 37.12 प्रतिशत शिक्षकों की सेवा सीमा 2 साल तक, 30.57 प्रतिशत शिक्षकों की 2 से 6 साल तक तथा 32.31 प्रतिशत शिक्षकों की 6 साल से अधिक है। अध्यापकों की योग्यता आदि से संबंधित आंकड़ों की तुलना जब हम प्रदेश की औसत स्थिति से करते हैं तो यह पाते हैं कि पूरे प्रदेश के सिर्फ 32.36 प्रतिशत महिला शिक्षकों के स्थान पर वाराणसी में 51 प्रतिशत शिक्षक महिलायें हैं। प्रशिक्षित अध्यापकों का प्रतिशत पूरे प्रदेश की तरह वाराणसी जनपद में भी शत-प्रतिशत है। ऐसा इसलिए सम्भव हो पाया है कि अध्यापक की नियुक्ति के लिए प्रशिक्षण अनिवार्य योग्यता है तथा शिक्षा मित्रों को अनिवार्य प्रशिक्षण पूरे प्रदेश में दिया गया है।

उपरोक्त तथ्यों के अलावा हमने अपने अध्ययन में पाया कि केवल 12 प्रतिशत एवं 8 प्रतिशत प्रधानाध्यापकों की शैक्षणिक योग्यता क्रमशः स्नातक एवं परास्नातक है। 80 प्रतिशत प्रधानाध्यापकों की उच्चतम योग्यता, उच्चतर माध्यमिक स्तर तक अथवा उससे कम ही है। ऐसा सम्भवतः इसलिए है कि कुछ वर्ष पहले प्राथमिक शिक्षकों के लिए वांछित शैक्षिक योग्यता केवल उच्चतर माध्यमिक के साथ बी.टी.सी. प्रशिक्षण ही था।

अंततः शिक्षा की गुणवत्ता शिक्षक की शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के स्वरूप पर निर्भर करती है। गोविन्दा और वर्गीज (1993) के अनुसार- ''वे ही विद्यालय प्रभावशाली हैं जो शिक्षक एवं शिक्षार्थी, दोनों के समयों का अधिकाधिक उपयोग अधिगम क्रियाओं में करते हैं।'' अर्थात समय के सदुपयोग का ढंग ही गुणवत्ता में

भिन्नता लाती है।

गृहकार्य एवं उसकी नियमित जांच, विद्यालय की गुणवत्ता का एक महत्वपूर्ण घटक है। हमने अपने इस अध्ययन में यह देखा कि 84 प्रतिशत विद्यालयों में गृहकार्य दिया जाता है जबकि 16 प्रतिशत विद्यालयों में गृहकार्य का अस्तित्व ही नहीं है। जिन 84 प्रतिशत विद्यालयों में गृहकार्य बच्चों को दिया जाता है उनमें 20 प्रतिशत विद्यालयों के अध्यापक उसे जांचने की जहमत नहीं उठाते हैं।

मध्याह्न भोजन योजना: भारत सरकार की मध्याह्न भोजन योजना प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए एक लीवर की तरह है। यह योजना बच्चों के स्वास्थ्य तथा विद्यालय में ठहराव को ध्यान में रखकर शुरू की गयी है।

तालिका-5 में मेनू के अनुसार भोजन, मात्रा तथा भोजन करने के लिए वर्तन की व्यवस्था संबंधी आंकड़े प्रदर्शित हैं। केवल 48 प्रतिशत विद्यालय मेनू का अनुपालन

तालिका-5

मध्याह्न भोजन की स्थिति

विकास खण्ड	मध्याह्न भोजन					
	मेनू के अनुसार		उचित मात्रा		छात्रों के लिए बर्तन	
	हाँ	नहीं	हाँ	नहीं	अच्छा	खराब
आराजीलाइन्स (4)	3	1	2	2	3	1
काशी विद्यापीठ (3)	3			3	2	1
पिण्डरा (3)		3	1	2		3
सेवापुरी (3)	3			3		3
बड़ागांव (3)	1	2		3		3
हरहुआ (3)	1	2		3		3
चोलापुर (3)		3		3	1	2
चिरईगांव (3)	1	2	1	2		3
योग (25)	**12**	**13**	**4**	**21**	**6**	**19**

करते हैं जबकि 52 प्रतिशत विद्यालय नहीं करते हैं। केवल 16 प्रतिशत विद्यालयों के विद्यार्थियों ने मध्याह्न भोजन की मात्रा के प्रति संतोष जताया, जबकि 84 प्रतिशत विद्यालयों के बच्चों ने स्पष्ट रूप से असंतोष की बात स्वीकारी है। सरकार द्वारा बच्चों को खाने के लिए बर्तन मुहैया कराये जाने के बावजूद मात्र 24 प्रतिशत विद्यालयों में बर्तन की व्यवस्था संतोषजनक है, जबकि 76 प्रतिशत स्कूलों में यह व्यवस्था असंतोषजनक है। बच्चे अपने घरों से बर्तन लाने के लिए मजबूर हैं।

समय सारणी एवं उसका अनुपालन: समय सारणी एवं उसका अनुपालन विद्यालयीय गुणवत्ता का बहुत ही महत्वपूर्ण घटक है। जनपद में इस संदर्भ में तीन श्रेणियों के विद्यालय हैं। 28 प्रतिशत विद्यालयों में समय सारणी के अनुसार अध्ययन – अध्यापन का कार्य होता है। 48 प्रतिशत विद्यालयों में समय सारणी तो है लेकिन उसका पालन नहीं किया जाता है। 24 प्रतिशत विद्यालयों में नाम–मात्र की भी समय सारणी नहीं हैं।

सामुदायिक सहभागिता: माता–पिता एवं समुदाय की सहभागिता भी विद्यालय के शैक्षिक गुणवत्ता के लिए एक घटक है। 73वें संविधान संशोधन के द्वारा पंचायती राज व्यवस्था की प्राथमिक शिक्षा में सहभागिता सुनिश्चित की गई है। वास्तविकता में, ग्राम शिक्षा समिति, ग्राम प्रधान, समुदाय एवं माता–पिता की विद्यालय में सहभागिता व्यवहारत: असंतोषजनक है। माता–पिता अपने बच्चों की शिक्षा की अपेक्षा छात्रवृत्ति, गणवेष इत्यादि उत्प्रेरकों के प्रति अधिक आसक्त रहते हैं। विद्यालयीय क्रियाकलापों में समुदाय की सहभागिता के संदर्भ में हमने पाया कि 24 प्रतिशत विद्यालयों में उत्तम, 52 प्रतिशत विद्यालयों में सामान्य तथा 24 प्रतिशत विद्यालयों में खराब स्थिति में हैं।

प्रबंधन: शिक्षा की गुणवत्ता मुख्यत: उपलब्ध संसाधनों की बहुलता से अधिक विद्यालयों के प्रबंधन की विधि पर निर्भर होती है। गुणवत्तायुक्त शिक्षा के लिए विद्यालय का कुशल प्रबंधन आवश्यक है। विद्यालय की गुणवत्ता प्रधानाध्यापक के गतिशील प्रभावी नेतृत्व, नियोजन, प्रशासन, पर्यवेक्षण, दार्शनिक चिन्तन तथा कुशल प्रबंधन की क्षमता का भी परिणाम है। जिन विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों में कुशल नेतृत्व की क्षमता है, वे विद्यालय निस्संदेह पर्याप्त संसाधनों की कमी के बावजूद प्रभावी तथा सफल विद्यालय बन जाते हैं। जैसा कि हमने अपने अध्ययन के दौरान महसूस किया अधिकांश विद्यालयों के प्रधानाध्यापक केवल अपने सेवा–समय के आध

ाार पर ही इस पद को सुशोभित कर रहे हैं, भले ही वे शैक्षणिक योग्यता, व्यावसायिक प्रशिक्षण आदि में अपने सहायक अध्यापकों की तुलना में काफी पीछे हों। अत: जनपद के अधिकतर विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों में कुशल प्रबंधन के गुणों की नितान्त आवश्यकता है। विकसित देशों की तरह प्रधानाध्यापकों को इन नेतृत्व के गुणों के विकास के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता है। यहाँ अध्यापक ही, बिना किसी प्रशिक्षण के प्रधानाध्यापक के पद पर प्रोन्नत कर दिये जाते हैं। ऐसी व्यवस्था में प्रबंधन क्षमता के विकास के लिए समुचित प्रशिक्षण आवश्यक है।

विद्यालयों की समग्र गुणवत्ता का मूल्यांकन: विद्यालयों की समग्र गुणवत्ता का मूल्यांकन करने हेतु हमने विद्यालयों में उपलब्ध विविध संसाधनों/गुणवत्ता सूचकों एवं उनकी स्थिति यथा उत्तम, सामान्य तथा खराब के आधार पर विद्यालयों का समग्र मूल्यांकन किया। उपलब्ध प्रत्येक संसाधन/सुविधा को उत्तम होने की दशा में तीन, सामान्य की दशा में दो, खराब स्थिति पर एक और अनुपलब्ध होने पर शून्य अंक प्रदान किया गया। इस प्रकार कुल 17 सूचकों के आधार पर विद्यालयों का अंकन किया गया तथा 25 से कम समग्र अंक पने वाले विद्यालयों को खराब, 25 से 34 के बीच अंक पाने वाले विद्यालयों को सामान्य तथा 35 या इससे अधिक अंक पाने वाले विद्यालयों को उत्तम गुणवत्तायुक्त विद्यालय के रूप में चिन्हित किया गया। समग्र अंकों का यह मानदण्ड इस आधार पर निर्धारित किया गया था कि कुछ गुणवत्ता सूचकों को 04 (0, 1, 2, 3) वर्गों में विभक्त किया गया था जबकि कुछ सूचकों को मात्र 2 (0, 1) वर्गों में विभक्त किया गया था। इस आधार पर वाराणसी जनपद के 8 प्रतिशत विद्यालय उत्तम गुणवत्ता के, 76 प्रतिशत विद्यालय सामान्य गुणवत्ता के एवं 16 प्रतिशत विद्यालय खराब गुणवत्ता के पाये गये। विद्यालयों की गुणवत्ता के संदर्भ में ऐसा कोई आंकड़ा प्रदेश स्तर पर उपलब्ध नहीं है।

निष्कर्ष: उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि वाराणसी जनपद के प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति प्रदेश के अन्य विद्यालयों की तुलना में काफी ठीक होने के बाद भी सर्व शिक्षा अभियान के मानकों के अनुरूप नहीं है। तमाम सुविधायें उपलब्ध होने के बावजूद उनका लाभ छात्रों को नहीं मिल पा रहा है। ऐसा सम्भवत: समाज एवं अध्यापकों में सरकारी विद्यालयों के संदर्भ में फैलायी गयी गलत धारणाओं के कारण है। यदि समाज के विभिन्न वर्गों के लोग अपने बच्चों को सरकारी

विद्यालयों में भेजे एवं विद्यालय के विभिन्न गतिविधियों का सकारात्मक मूल्यांकन करें तो निश्चित रूप से प्राथमिक शिक्षा और उसकी गुणवत्ता जनपद के साथ-साथ पूरे प्रदेश में बढ़ेगी।

संदर्भ ग्रंथ

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (2005-2006) : *एनुअल रिपोर्ट 2005-2006, डिपार्टमेंट आफ एलीमेंट्री एजूकेशन एंड लिटरेसी,* नई दिल्ली : मानव संसाधन विकास मंत्रालय

उत्तर प्रदेश, सीमैट (2003-2004) : *अभिनव* नं. 28 इलाहाबाद : सीमैट

गोविन्दा, आर. (1999, अप्रैल) टीचर एजुकेशन : मेंनेजमेंट आफ क्वालिटी एंड चेन्ज, *डी.पी.ई.पी. कॉलिंग, नं. 5*, पृ. संख्या 24-31

गोविन्दा, आर. एवं वर्गीज एन.वी. (1993) : *क्वालिटी ऑफ प्राइमरी स्कूलिंग इन इंडिया : ए केस स्टडी ऑफ मध्य प्रदेश,* पेरिस : आई.आई.ई.पी.

न्यूपा, (2006) : *एलीमेंट्री एजूकेशन इन इंडिया - प्रोग्रेस टुवर्ड्स यू.ई.ई., फ्लैश स्टैटसटिक्स* (2005-06)-*डी आई.एस.ई.* नई दिल्ली : न्यूपा

मेहता, ए.सी. (2006) : *एलिमेंट्री एजूकेशन इन इंडिया : एनालिटिकल रिपोर्ट 2004-05,* नई दिल्ली : नीपा एवं मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

यूनेस्को, (2002) : *एजूकेशन फॉर ऑल - इज द वर्ल्ड ऑन ट्रैक?* पेरिस : यूनेस्को

यूनेस्को, (2005) : *एजूकेशन फॉर ऑल - द क्वालिटी इज़ इम्पेरेटिव,* पेरिस : यूनेस्को

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 2, अगस्त 2007

वर्तमान परिवेश में मानवीय, सामाजिक एवं स्थिरतापूर्ण विकास की अवधारणा

सुमित्रा सिंह*

कर्म प्रधान और बुद्धि से संचालित मानव प्रजाति सदैव विकास की ओर अग्रसर होती रही है। समग्र विकास की सतत् अभिलाषा स्थिरता के स्वप्न को साथ लेकर चलती रही है जिसके कारण प्रयोगधर्मिता के नूतन आयामों का स्वत: अथवा प्रयासपूर्ण उद्घाटन होता रहा है जिसमें देश, काल एवं बदलती परिस्थितियों के अनुसार कभी मानवीय तो कभी नैतिक, कभी व्यक्तिगत तो कभी सार्वजनिक पक्ष प्रधानता प्राप्त करते रहे हैं।

सम्पूर्ण विश्व में ऐसा विकास ही काम्य है जिसमें मानवीय विकास का आधार नैतिकता हो। नैतिकता से हीन मनुष्य का विकास किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता है।

उचित मानवीय विकास के अभाव में सामाजिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सामाजिक विकास मनुष्य की सामाजिक आवश्यकता है। इसमें विवेकशील सामाजिक विकास के रास्ते पर चलकर वास्तव में सामाजिक प्राणी होने का श्रेय मनुष्य को प्राप्त हो पाता है।

विकास का संबंध मानवीय दृष्टि से हो, सामाजिक दृष्टि से हो अथवा विकासमान स्थिरता की दृष्टि से हो, वर्तमान में अत्यन्त आवश्यक होगा कि (इसके लिए) उपलब्ध समस्त प्रकार के साधनों (मानव निर्मित अथवा प्राकृतिक) का कुशलतापूर्ण एवं मितव्ययितापूर्ण उपयोग किया जाए। उपलब्ध संसाधनों का दक्षतापूर्ण उपयोग स्थिरतापूर्वक विकास की प्राथमिकता शर्त है। यदि इससे विचलन हो तो विकास की अवधारणा एकांगी हो जाएगी और वांछित विकास संभव नहीं हो सकेगा।

* रीडर, शिक्षा विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

मानव ने निरन्तर विकास के स्वप्न को साकार करने का प्रयास किया है। विकास करने की इस आकांक्षा के पीछे उसकी बौद्धिकता, तर्क शक्ति, आस्था, विश्वास एवं अनुभवों का सुदीर्घ इतिहास रहा है। जागतिक एवं पारलौकिक तथ्यों के संदर्भ में वैचारिक सृजन एवं निष्कर्ष निमार्ण की गुढ़ प्रक्रिया में संलग्न भारतीय मनीषा सदैव अप्रतिम सिद्ध हुई है और संस्कृति का सम्बोध, इसका उत्पाद रहा है।

ज्ञानमीमांसा, तत्व मीमांसा और मूल्य मीमांसा का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रश्नों पर जितना विचार मंथन भारतवर्ष में हुआ उतना संभवत:विश्व के किसी भी देश में किसी कालखण्ड में नहीं हुआ, जिसका प्रमाण वैदिक साहित्य से मिल जाता है। सत्य ज्ञान क्या है? इसकी प्राप्ति कैसे संभव है? सत्य एवं असत्य ज्ञान के मध्य भेद कैसे किया जाय? तत्वों का स्वरूप क्या है? किसे तत्वों में सम्मिलित किया जाए? क्या करणीय है और क्या करणीय नहीं है? उचित और अनुकूल क्या है? जीवन क्या है, प्रकृति क्या है, गुण एवं अवगुण क्या है, समाज और उसमें व्याप्त अन्तर्सम्बन्धों की प्रकृति क्या है, कैसे एक विकासोन्मुख मानवी समाज की स्थापना की जा सकती है; सीमित साधनों का किस प्रकार उपयोग करके विकास के भौतिक स्वरूप को नया आयाम दिया जा सकता है, कैसे इन संसाधनों की बचत करके वृद्धिमान विकास को गति प्रदान की जा सकती है, कैसे वैश्विक परिदृश्य में स्वयं को प्रतिस्पर्धा उन्मुख बनाया जा सकता है; कैसे नवीनतम ज्ञान एवं सूचना की तीव्रतम प्रणालियों को अपने लिए उपयोगी बनाया जा सकता है?

ये समस्त प्रश्न क्रमश: दार्शनिक, मानवीय, सामाजिक एवं भौतिक विकास से संबंधित हैं। अनेक परिस्थितियों में ऐसे प्रश्न कठिन अवश्य प्रतीत होते हैं परंतु इन पर निरन्तर विचार होता रहा है। एक प्रकार से देखा जाय तो दार्शनिक इन्हीं गूढ़ प्रश्नों के उत्तर खोजता रहता है। निरन्तर चिन्तन- मनन के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों के माध्यम से एक ओर जहाँ कोई मान्यता अथवा मत की स्थापना या खंडन होता है वहीं दूसरी ओर मनुष्य जाति को एक दिशा मिलती है। इस दौरान एवं उसके पश्चात् भी मानवीय मूल्यों को एक सहारा मिलता है और ये मूल्य मानवीय विकास को आधार प्रदान करते हैं।

मानवीय विकास के निमित्त किया जाने वाला चिन्तन और उसका पक्ष चिन्तन की दिशा एवं उसके आयाम से प्रबलित होता है। चिन्तन की दिशा सकारात्मक हो तथा

आयाम विस्तृत हो तो चिन्तन की सार्थकता बढ़ती है और चिन्तक के विचारों को स्वीकार्यता मिलती है, साथ ही सार्वदेशिकता का दायरा बढ़ता है। इसी परिप्रेक्ष्य में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया' और 'वसुधैव कुटुम्बकम' पर दृष्टि डाली जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि उससे उत्तम कोटि एवं विस्तृत आयाम वाली चिन्तनधारा का अन्यत्र उदाहरण मिलना दुर्लभ है। इसे मानवीय विकास की चरम परिणति माना जा सकता है और यही सार्वकालिक कामना या सर्वोत्तम लक्ष्य होना चाहिए।

वर्तमान समय में चिन्तन की यही दिशा सर्वाधिक काम्य है जिसमें सभी को सुख प्रदान करने की कामना की गई है। मनुष्य मात्र के लिए ही नहीं वरन् सम्पूर्ण सृष्टि के लिए सुख की कामना स्वयं में परामानवीय है जिसके विकास के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि मनुष्य को ज्ञानवान् एवं गतिशील नैतिक नेतृत्व प्रदान किया जाय। नवीनतम ज्ञान एवं सामयिक नैतिकता को भी ध्यान में रखना आवश्यक होगा क्योंकि तभी मानवीय विकास को नई दिशा प्रदान की जा सकती है।

जबतक मानवीय विकास स्थिरतापूर्वक और अनवरत नहीं होता रहेगा तब तक सामाजिक विकास भी नहीं हो सकेगा। केवल समाज में रहकर और सामाजिक प्राणी का दर्जा प्राप्त कर लेने से ही मानवीय विकास सुनिश्चित नहीं किया जा सकता जबकि नैतिक एवं आत्मिक विकास के आधार पर मानवीय गुणों को धारित करने वाला मनुष्य बड़ी सरलता से सामाजिक-व्यवस्था और उसके गुणों को आत्मसात कर सकता है और समाज को गतिशील करते हुए सामाजिक विकास में सहभागी बन सकता है।

चूँकि मनुष्य समाज से विलग होकर नहीं रह पाता इसलिए उसके मानवीय गुणों का प्राकट्य समाज में ही संभव हो पाता है। इसी से समाज को गति मिलती है और समाज जीवन्त बना रहता है। समाज में रहकर विभिन्न प्रकार के संबंधों का निर्वहन एवं परस्पर वार्तालाप, क्रिया- प्रतिक्रिया इत्यादि का निरन्तर गतिमान चक्र इस बात को संकेत करता है। प्रसिद्ध प्रकृतिवादी विचारक रूसो जिसने सदा समाज की आलोचना की और उसे बुराई की जड़ माना फिर भी अपने कल्पित पात्र (एमील) को एक समय के उपरांत समाज में प्रविष्ट कराने की योजना निर्मित की। संभवतः उसने भी एकाकी मनुष्य की कल्पना को निरर्थक मान लिया था।

स्पष्टतः समाज के कुछ नियम और प्रचलन हैं जिनके आधार पर समाज परिचालित होता है। समाज के कुछ नियमों, प्रचलनों की आलोचना की जाती रही है

फिर भी इनका समाज पर आधिपत्य कम नहीं हुआ है। समाज के समग्र रूप से विकसित होने के लिए यह आवश्यक है कि नियमों और प्रचलनों का भी विकास हो। पुराने अथवा अप्रासंगिक हो चुके नियम और प्रचलन यदि परम्परापोषण के साथ-साथ अन्य मिथकों का सहारा लेकर समाज में टिके हुए हैं तो उनका शोधन, नवीनीकरण अथवा विलोपन किया जाना चाहिए।

यह करने के पूर्व इन पर पर्याप्त विचार-विमर्श अवश्य होना चाहिए ताकि इन नियमों और प्रचलनों, मान्यताओं का पक्ष-विपक्ष स्पष्ट हो जाएगा; स्वीकार करने या न करने के कारणों का पता चल सकेगा और दूसरी ओर नवीन लोकतांत्रिक सामाजिकता का विकास होगा। यही वास्तविक सामाजिक विकास की आधारशीला होगी और तब जो सामाजिक विकास का नया प्रतिमान सामने आयेगा वह स्वचालित सामाजिक विकास को जन्म देगा।

विचार करें तो पता चलता है कि वर्तमान समय में उचित मानवीय विकास और सुस्थापित सामाजिक विकास तभी संभव होगा जबकि आर्थिक समृद्धि हो। इसके अभाव में विकास की कल्पना भी असंभव होगी। बदलते वैश्विक परिदृश्य में विकास की अवधारणा ने अपना रूप परिवर्तन किया है। एक ओर विकास के प्रतिमान और मानकों में परिवर्तन हो रहा है तो दूसरी ओर इसको प्राप्त करने और निरन्तरता बनाए रखने के लिए नवीन साधनों का उपयोग करने की तकनीक विकसित होती जा रही है।

उच्च मानवीय मूल्यों एवं सामाजिक स्थापनाओं का तिरस्कार प्रतिपल मानव को प्रयोजनवादी बना रहा है। अपने विकास के लिए दूसरे को भारी कीमत अदा करने पर विवश किया जाना, इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि मानवीयता और सामाजिकता के स्थापित ढाँचे को चोट पहुँचाई जा रही है।

कोई भी राष्ट्र अपने भौतिक संसाधनों के बल पर ही विकास की एक विशेष रणनीति का निर्माण करता है अथवा उपलब्ध रणनीतिक विकल्पों में से सर्वोत्तम का चुनाव करता है। ऐसा करते समय उस राष्ट्र विशेष द्वारा वहाँ की भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सामयिक परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना आवश्यक होता है। मुख्यत:भौगोलिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर जब योजनाओं

का निर्माण किया जाता है तो इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता है कि आवश्यक आधारभूत सरंचनाओं को विकसित करने के लिए कौन-कौन से प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध हैं और साथ ही उपलब्ध मानवीय श्रम का स्वरूप क्या है और इसके आधार पर किस सीमा तक मानव निर्मित संसाधनों का निर्माण एवं विकास किया जा सकता है।

अब तक न्यूनाधिक रूप से इसी प्रकार के प्रश्नों पर विचार करके विकास की योजनाओं को स्वरूप प्रदान किया जाता रहा है। धीरे-धीरे योजनागत दोषों, औद्योगिक कचरों, प्रदूषित वायुमण्डल के विपरीत प्रभावों, जैव-विविधता के संकटों और भावी पीढ़ी को इन सबके दुष्प्रभावों से बचाने के लिए सामने आये विचारों ने एक नई बहस और संकल्पना को जन्म दिया है जिसमें विकास तो होगा परंतु उसके कतिपय पार्श्व प्रभाव नहीं के बराबर होंगें और जिसे नाम मिला-संधृत अथवा टिकाऊ विकास का। बिना भावी पीढ़ी के अपनी जरूरतों को पूरा करने की क्षमता में ह्रास किये विद्यमान पीढ़ी की जरूरतों को पूरा करना संघृत विकास है। सन् 1992 में रियो-डी जनेरियो सम्मेलन के एजेन्डा 21 में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि मूलभूत पारिस्थितिकी प्रक्रिाओं एवं जीवन पोषक तत्वों का अनुरक्षण एवं जीव-प्रजातियों की विविधता का संवर्धन, संधृत (टिकाऊ) विकास के प्रमुख आधार हैं।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि संधृत विकास भौगोलिक तंत्र से अधिक संबंधित है। यदि मानवीय संदर्भ में संधृत विकास की बात की जाय तो इसे 'परोपकाराय पुण्याय, पापाय परपीड़नम्' अथवा 'आत्मनः प्रतिकूजानि परेषां न समाचरेत्' से जोड़ा जा सकता है। इसी प्रकार यदि सामाजिक संदर्भ में टिकाऊ विकास को समाविष्ट किया जाय तो सामाजिक समरसता और अन्य मानवीय मूल्य इसी में समाहित हो जायेंगे।

इस प्रकार मानवीय, सामाजिक एवं संधृत विकास के नैरन्तर्य एवं वृद्धि के लिए मानवीय मूल्यों का सम्यक ज्ञान, मानवीय गरिमा की समझ, सामाजिक कुशलता एवं व्यवस्थापन, सामाजिक संबंधों का निर्वहन, समाज के योग्य नागरिकता के गुणों का विकास, संस्कृति एवं सभ्यता का ज्ञान, उचित एवं उपयोगी अनुभवों का हस्तांतरण, उचित प्रबंधन, शिक्षा की उचित व्यवस्था, उचित मार्गनिर्देशन की सुविधा, नवीनतम

सूचना व तकनीकी ज्ञान की जानकारी, वैज्ञानिक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन, स्वस्थ प्रतिस्पर्धा की भावना का विकास और अंत में सबके कल्याण की कामना जैसी उत्तम भावना का विकास अपेक्षित है।

संदर्भ

शुक्ला ए. (ई.डी.) (2000): *रीजनल प्लांनिग एंड सस्टेनेबल डवलपमेंट,* कनिष्क पब्लिसर्श एंड डिस्ट्रीब्यूट्र्स नई दिल्ली 110002

सिंह सुमित्रा एवं मैथिलीरमण प्रसाद सिंह (2004): *शिक्षा के विविध आयाम,* भार्गव प्रकाशन, आगरा

सिंह, जगदीश (2003): *पर्यावरण एवं संविकास* ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 2, अगस्त 2007

सरकारी, निजी अनुदानित तथा निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव का तुलनात्मक अध्ययन

भरत टॉक

सारांश

शिक्षा प्राप्त करके व्यक्ति एक स्वावलंबी एवं गुणवान सामाजिक नागरिक बनकर राष्ट्रीय प्रगति को बढ़ाता है। विद्यालय में बालकों को शिक्षा प्रदान करने हेतु शिक्षक की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है। वांछित शिक्षा प्रदान करने हेतु शिक्षक विषय का ज्ञाता एवं समायोजित व्यक्तित्व वाला होना चाहिए। लेकिन वर्तमान में यह देखा गया है कि शिक्षण कार्य करते समय अध्यापकों पर कार्य संबंधी जटिलताओं, प्रशासनिक कठोरता तथा अन्य कारणों से व्यावसायिक दबाव रहता है जो उनकी शिक्षण क्षमता और समायोजन को प्रभावित करता है। देश में मुख्य रूप से सरकारी, निजी अनुदानित एवं निजी गैर अनुदानित, तीन प्रकारक के विद्यालय शिक्षा देने का कार्य करते हैं। इन विद्यालयों के अध्यापकों का अध्ययन करने पर यह पाया गया कि तीनों प्रकार के विद्यालयों के अध्यापक व्यावसायिक दबाव से पीड़ित हैं। महिला अध्यापिकाएँ पुरूषों की तुलना में व्यावसायिक दबाव से अधिक ग्रसित हैं। इसके फलस्वरूप, इन सभी की शिक्षण क्षमता प्रभावित होती है, जिसका कुफल छात्रों को भुगतना पड़ता है। लेकिन तीनों प्रकार के विद्यालयों के अध्यापकों की तुलना करने पर उनके व्यावसायिक दबाव में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

* सहायक प्रोफेसर, शाह गोवर्धनलाल काबरा शिक्षक महाविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान

प्रस्तावना

शिक्षा आज के समाज की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता बन गयी है। शिक्षा प्राप्त करके व्यक्ति अर्थोपार्जन के योग्य बनता है तथा एक स्वावलंबी एवं गुणवान नागरिक बनकर राष्ट्रीय प्रगति को बढ़ाता है। विद्यालय में बालकों को शिक्षा प्रदान करने का कार्य शिक्षक करता है, इस प्रकार समूची शैक्षणिक व्यवस्था में शिक्षक की केन्द्रीय भूमिका होती है।

वस्तुत: वांछित शिक्षा प्रदान करने के लिए वर्तमान व्यवस्था में एक अच्छे शिक्षक की आवश्यकता है, जो न केवल अपने विषय का ही ज्ञान रखता हो वरन एक प्रभावशाली, समायोजित व्यक्तित्व भी रखता हो। लेकिन आज अधिकतर विद्यालयों में शिक्षक को ठीक ढ़ंग से समायोजित नहीं देखा गया है क्योंकि शिक्षण व्यवसाय में कार्य करते हुए उन पर व्यावसायिक दबाव रहता है। मैक्ग्राथ के अनुसार व्यावसायिक दबाव की सम्भावनाएं वहां बनती है जबकि कार्य-वातावरण की आकांक्षाएँ व्यक्ति के समक्ष ऐसी मांग प्रस्तुत करती हैं जो व्यक्ति की क्षमताओं एवं स्रोतों की तुलना में भारी पड़ती है। इस प्रकार व्यावसायिक दबाव (आक्यूपेशनल स्ट्रैस) शिक्षक पर एक मानसिक या भौतिक मांग है जो उसकी स्पर्धात्मक क्षमता की सीमा से बाहर चली जाती है । इस प्रकार व्यावसायिक दबाव उसके समायोजन एवं कार्यक्षमता को प्रभावित करता है जो शिक्षा के क्षेत्र में तेजी से बढ़ती हुई एक विकट समस्या है। शिक्षण व्यवसाय में कार्य संबंधी जटिलताओं का बढ़ना एवं शिक्षकों पर बढ़ता प्रशासनिक व आर्थिक दबाव, इसके मुख्य कारण के रूप में प्रकट होते हैं। व्यावसायिक दबाव के फलस्वरूप अध्यापकों में अनिद्रा, व्यवहार में चिड़चिड़ापन, थकान, विभिन्न उदर-विकार, अवसाद, उत्साहहीनता आदि व्याधियाँ शनै:'शनै: उत्पन्न होने लगती हैं, स्वास्थ्य कुप्रभावित होता है, जिससे शिक्षकों की कार्यक्षमता प्रभावित होती है।

वस्तुत: हमारे देश में बालकों को शिक्षा प्रदान करने का कार्य, तीन प्रकार के विद्यालय मुख्य रूप से सम्पन्न करते हैं। ये क्रमश: सरकारी, निजी अनुदानित एवं निजी गैर-अनुदानित विद्यालय हैं। सरकारी तथा निजी अनुदानित विद्यालयों में वित्तीय सहायता सरकार से प्राप्त होती है, अत: यहाँ के शिक्षकों को वेतन संबंधी समस्या के दबाव का सामना नहीं करना पड़ता है। दूसरी ओर निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों में

कम वेतनमान शिक्षकों पर व्यावसायिक दबाव बनाता है। यह देखा गया है कि सरकारी विद्यालयों की अपेक्षा निजी व निजी गैर- अनुदानित विद्यालयों में प्रबन्धकीय नियमों का पालन अपेक्षाकृत अधिक कठोरता से किया जाता है जिससे अनुशासन संबंधी समस्याएँ कम रहती हैं, लेकिन वहाँ के अध्यापकों को वेतन व सुविधाएँ कम दी जाती हैं। दोनों प्रकार की निजी शिक्षण संस्थाओं में कई अधिकारी अपनी-अपनी संस्थाओं के मामलों एवं अध्यापकों के शिक्षण कार्य में अनावश्यक हस्तक्षेप करते रहते हैं। इससे शिक्षकों पर व्यावसायिक दबाव पड़ता है, उनकी शिक्षण दक्षता प्रभावित होती है, जिसके अनेक दुष्परिणाम समाज व बालकों को भुगतने पड़ते हैं।

विद्यालयी शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर दृष्टिपात करने पर हम यह देखते हैं कि माध्यमिक शिक्षा, प्राथमिक एवं महाविद्यालयी शिक्षा को जोड़ने वाली सीधी कड़ी है। अत: उच्च माध्यमिक शिक्षा में बालक को सही रूप में ढालने एवं उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास हेतु, अध्यापक में सही अभिवृत्ति का होना आवश्यक है, तभी बालक भावी जीवन में सफल हो सकेगा। इस वृहत जिम्मेदारी को निभाने हेतु शिक्षक को स्वंय के लिए एक अनुकूल एवं स्वतंत्र संस्थागत शिक्षण वातावरण मिलना चाहिए जिसमें किसी प्रकार का व्यावसायिक दबाव नहीं हो तथा अध्यापक सही ढ़ंग से समायोजित हो। लेकिन दुर्भाग्य से, परिस्थितियों की प्रतिकूलता के कारण अध्यापकों में अनुकूल समायोजन का अभाव है, उनकी कार्य परिस्थितियाँ उन पर व्यावसायिक दबाव बनाती हैं तथा वे अपनी भूमिका के प्रति न्याय नहीं कर पाते हैं।

शोधकर्त्ता यह महसूस करता है कि ऐसा शिक्षक जिसकी विचारधाराएँ असन्तुष्ट व कुंठित हो, वह अपने शिक्षण दायित्व के निर्वहन में पूर्ण योगदान नहीं दे सकता, जिसका कुफल छात्रों को भुगतना पड़ता है। अत: इस दिशा में यह जानना परम आवश्यक है कि सरकारी, निजी अनुदानित एवं निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों के अध्यापकों में व्यावसायिक दबाव का स्वरूप एवं स्तर कैसा है? साथ ही तीनों विद्यालयों की तुलना करके यह भी जानने का प्रयास किया जाए कि क्या उनके व्यावसायिक दबाव में सार्थक अंतर है? इन तीनों प्रकार के विद्यालयों में व्यावयायिक दबाव चर को लेकर बहुत कम अनुसंधान देखने में आए हैं। अत: उपर्युक्त उद्देश्यों एवं विचारों से प्रेरित होकर यह शोधकार्य सम्पन्न किया गया है।

शोध अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य

शोधकर्त्ता ने अध्ययन के कुछ विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित किए हैं, जो इस प्रकार हैं:

1. सरकारी, निजी, अनुदानित एवं निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों के अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव का अध्ययन करना।
2. सरकारी, निजी, अनुदानित एवं निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. सरकारी, निजी, अनुदानित एवं निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों की महिला अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. सरकारी, निजी, अनुदानित एवं निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों की महिला एवं पुरुष अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाएँ

शोधकार्य सुव्यवस्थित रूप से सम्पादित करने हेतु शोधकर्त्ता ने प्रारम्भ में निम्नलिखित परिकल्पनाओं की संरचना की, जो इस प्रकार हैं:

1. सरकारी, निजी, अनुदानित एवं निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों के अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।
2. सरकारी, निजी, अनुदानित एवं निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों के पुरूष अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।
3. सरकारी, निजी, अनुदानित एवं निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों की महिला अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।
4. सरकारी, निजी, अनुदानित एवं निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों की महिला एवं पुरूष अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

शोध अध्ययन का न्यायदर्श

प्रस्तुत शोधकार्य के लिए जोधपुर जिले के सरकारी, निजी अनुदानित एंव निजी गैर-अनुदानित, इन तीनों प्रकार के विद्यालयों से कुल 450 अध्यापकों का चयन किया गया

है। प्रत्येक प्रकार के विद्यालय में 75 पुरुष एवं 75 महिला अध्यापिकाओं का चयन किया गया है। न्यायदर्श का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया है।

शोध अध्ययन की सीमाएँ

प्रस्तुत अध्ययन की निम्नलिखित परिसीमाएँ हैं:

1. यह शोधकार्य जोधपुर जिले तक ही सीमित है।
2. प्रस्तुत अध्ययन में केवल सरकारी, निजी अनुदानित एवं निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों को ही सम्मिलित किया गया है।
3. इसमें केवल सीनियर सैकण्डरी विद्यालय के शिक्षकों को ही न्यादर्श के रूप में लिया गया है।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त विधि

शिक्षा मनोविज्ञान द्वारा अनुसंधान की अनेक विधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं। प्रत्येक अनुसंधानकर्त्ता अधिक विश्वसनीय व ठोस परिणामों की प्राप्ति हेतु कतिपय विधियों का चयन करता है। प्रस्तुत अनुसंधान में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। सामाजिक एवं शैक्षिक क्षेत्रों में विभिन्न समस्याओं के अध्ययन हेतु 'सर्वे' एक महत्वपूर्ण साधन व उपकरण है।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

व्यावसायिक दबाव प्रश्नावली: यह परीक्षण डॉ. ए. के. श्रीवास्तव एवं डॉ. ए.पी. सिंह द्वारा निर्मित प्रमापीकृत उपकरण के आधार पर किया गया है तथा जिसका प्रयोग अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव को मापने हेतु किया जाता है। इसमें कुल 46 कथन हैं। प्रत्येक कथन के लिए पांच संभावित उत्तरों में से एक ही उत्तर देना है यथा-पूर्ण असहमत, असहमत, अनिश्चित, सहमत तथा पूर्ण सहमत।

अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकी प्रक्रिया

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु मध्यमान, प्रमाप विचलन एवं टी परीक्षण जैसी सांख्यिकी प्रविधियों का प्रयोग किया गया है।

आंकड़ों का विश्लेषण एवं विवेचना

तालिका–1

सरकारी एवं निजी अनुदानित विद्यालयों के अध्यापकों (पुरुष एवं महिला संयुक्त क्षेत्र) के व्यावसायिक दबाव का तुलनात्मक अध्ययन

श्रेणी	न्यादर्श	मध्यमान	प्रमाप विचलन	क्रान्तिक
सरकारी विद्यालय के अध्यापक	150	120.91	19.42	1.07
निजी अनुदानित विद्यालय के अध्यापक	150	118.36	21.52	

उपर्युक्त तालिका का अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि जोधपुर जिले के सीनियर सैकेण्डरी सरकारी विद्यालय के अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव के अंकों का मध्यमान 120.91 एवं प्रमाप विचलन 19.42 है तथा निजी अनुदानित विद्यालय के अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव अंकों का मध्यमान 118.36 एवं प्रमाप विचलन 21. 52 है। निर्धारित पैमाने के अनुसार दोनों समूल निम्न व्यवसायिक दबाव महसूस करते हैं। यह मूल्य 0.01 विश्वास स्तर के मूल्य 2.59 से कम है, अत: यह कहा जा सकता है कि दोनों समूहों के मध्यमानों में अंतर सार्थक नहीं है।

अभिप्राय यह है कि जोधपुर जिले के सरकारी एवं निजी अनुदानित विद्यालय के अध्यापकों में व्यावसायिक दबाव में अंतर नहीं है।

तालिका–2

निजी गैर–अनुदानित विद्यालयों के अध्यापकों (पुरुष एवं महिला संयुक्त क्षेत्र) के व्यावसायिक दबाव का तुलनात्मक अध्ययन

श्रेणी	न्यादर्श	मध्यमान	प्रमाप विचलन	क्रान्तिक
सरकारी विद्यालय के अध्यापक	150	120.91	19.42	0.07
निजी गैर–अनुदानित विद्यालय के अध्यापक	150	121.08	20.41	

उपर्युक्त तालिका का निकट से अवलोकन करने पर यह पता चलता है कि दोनों समूहों में निम्न व्यवसायिक दबाव का प्रभाव है। साथ ही यह भी पता चलता है कि दोनों मध्यमानों में 0.01 विश्वास स्तर पर अंतर असार्थक है अर्थात् सरकारी एवं निजी गैर-अनुदानित विद्यालय के अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव में कोई अंतर नहीं है।

तालिका-3

अनुदानित एवं निजी गैर-अनुदानित विद्यालय के अध्यापकों (पुरूष एवं महिला सयुंक्त क्षेत्र) के व्यावसायिक दबाव का तुलनात्मक अध्ययन

श्रेणी	न्यादर्श	मध्यमान	प्रमाप विचलन	क्रान्तिक
सरकारी विद्यालय के अध्यापक	150	118.36	21.52	1.12
निजी गैर-अनुदानित विद्यालय के अध्यापक	150	121.08	20.41	

तालिका 3 को देखने पर ज्ञात होता है कि जोधपुर जिले के सीनियर सैकेण्डरी निजी अनुदानित तथा निजी गैर -अनुदानित विद्यालय के अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव पर मध्यमानों के अंतर का क्रान्तिक अनुपात 1.12 है जोकि 0.01 विश्वास स्तर पर असार्थक है अर्थात् निजी अनुदानित एवं गैर-अनुदानित विद्यालय के अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव के बीच सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका-4

जोधपुर जिले के सरकारी एवं निजी अनुदानित विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव का तुलनात्मक अध्ययन

श्रेणी	न्यादर्श	मध्यमान	प्रमाप विचलन	क्रान्तिक
सरकारी विद्यालय के पुरुष अध्यापक	75	120.01	22.65	0.06
निजी गैर-अनुदानित विद्यालय के पुरुष अध्यापक	75	119.80	22.45	

उपयुक्त तालिका यह दर्शाती है कि जोधपुर जिले के सीनियर सैकेण्डरी सरकारी विद्यालय के पुरुष अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव के अंकों का माध्यमान 120.01 तथा निजी अनुदानित विद्यालय के पुरुष अध्यापकों का मध्यमान 119.80 है। दोनों ही समूह निम्न व्यवसायिक दबाव की श्रेणी में आते हैं तथा दोनों समूहों का व्यावसायिक दबाव पर मध्यमानों के अंतर का क्रान्तिक अनुपात 0.06 है, अत: यह कहा जा सकता है कि दोनों समूहों के मध्यमानों में अंतर सार्थक नहीं है।

तालिका–5

जोधपुर जिले के सरकारी, एवं निजी, गैर-अनुदानित विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव का तुलनात्मक अध्ययन

श्रेणी	न्यादर्श	मध्यमान	प्रमाप विचलन	क्रान्तिक
सरकारी विद्यालय के पुरुष अध्यापक	75	120.01	22.65	0.002
निजी गैर–अनुदानित विद्यालय के पुरुष अध्यापक	75	120.02	19.16	

तालिका 5 का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि क्रान्तिक अनुपात 0.002 जोकि 0.01 के सार्थकता स्तर 2.61 से कम है । अत: यह कहा जा सकता है कि जोधपुर जिले के सरकारी एवं निजी गैर–अनुदानित विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों के व्यवसायिक दबाव में कोई अंतर नहीं है।

तालिका-6

निजी अनुदानित एवं निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव का तुलनात्मक अध्ययन

श्रेणी	न्यादर्श	मध्यमान	प्रमाप विचलन	क्रान्तिक
निजी अनुदानित विद्यालय के पुरुष अध्यापक	75	119.80	22.45	0.06
निजी गैर-अनुदानित विद्यालय के अध्यापक	75	120.02	19.16	

तालिका 6 का निकट से अवलोकन करने पर यह तथ्य प्रकट होता है कि निजी अनुदानित एवं निजी गैर अनुदानित विद्यालयों के व्यवसायिक दबाव पर मध्यमान के अंतर का क्रान्तिक अनुपात 0.06 है, जोकि 0.01 विश्वास स्तर के मूल्य से कम है। अत: यह कहा जा सकता है कि दोनों समूहों के मध्यमानों में अंतर सार्थक नहीं है।

तालिका-7

सरकारी एवं निजी अनुदानित विद्यालयों की महिला अध्यापिकाओं के व्यावसायिक दबाव का तुलनात्मक अध्ययन-

श्रेणी	न्यादर्श	मध्यमान	प्रमाप विचलन	क्रान्तिक
सरकारी विद्यालयों की महिला अध्यापिकाएँ	75	121.47	15.61	1.53
निजी अनुदानित विद्यालयों की महिला अध्यापिकाएँ	75	116.91	19.16	

तालिका 7 यह दर्शाती है कि जोधपुर जिले के सरकारी एवं निजी अनुदानित विद्यालयों की महिला अध्यापिकाओं के व्यावसायिक दबाव पर मध्यमान क्रमश: 121.47 तथा 116.91 हैं, जो यह इंगित करता है कि महिलाएँ निम्न व्यावसायिक दबाव से पीड़ित

हैं। दोनों समूहों के मध्यमानों के अंतर का क्रान्तिक अनुपात 1.53 है जोकि 0.01 विश्वास स्तर के मूल्य 2.61 से कम है। अभिप्राय यह है कि दोनों समूहों की महिला अध्यापिकाओं के व्यवसायिक दबाव में कोई अंतर नहीं है।

तालिका–8

सरकारी एवं निजी गैर–अनुदानित विद्यालयों की महिला अध्यापिकाओं के व्यावसायिक दबाव का तुलनात्मक अध्ययन–

श्रेणी	न्यादर्श	मध्यमान	प्रमाप विचलन	क्रान्तिक
सरकारी विद्यालयों की महिला अध्यापिकाएँ	75	121.47	15.61	0.22
निजी गैर–अनुदानित विद्यालयों की महिला अध्यापिकाएँ	75	122.15	21.54	

तालिका 8 का अध्ययन करने पर यह पता चलता हैं कि दोनों समूहों के मध्यमानों का आकलित क्रान्तिक अनुपात 0.22 है जोकि 0.01 विश्वास स्तर के मूल्य 2.61 से कम है । अत: दोनों समूहों के मध्यमानों में सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका–9

निजी अनुदानित एवं निजी गैर–अनुदानित विद्यालयों की महिला अध्यापिकाओं के व्यावसायिक दबाव का तुलनात्मक अध्ययन–

श्रेणी	न्यादर्श	मध्यमान	प्रमाप विचलन	क्रान्तिक
निजी अनुदानित विद्यालयों की महिला अध्यापिकाएँ	75	116.91	20.45	1.53
निजी गैर–अनुदानित विद्यालयों की महिला अध्यापिकाएँ	75	122.15	21.54	

उपर्युक्त तालिका 9 का सूक्ष्म अवलोकन करने पर यह तथ्य प्रकट होता है कि

जोधपुर जिले के सीनियर सैकण्डरी निजी अनुदानित एंव निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों की महिला अध्यापिकाओं के व्यावसायिक दबाव के अंकों का मध्यमान क्रमशः 116.91 एवं 122.15 है। मूल्यांकन तालिका के अनुसार निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों की महिला अध्यापिकाएँ तुलनात्मक रूप से अधिक व्यावसायिक दबाव महसूस करती हैं। मध्यमानों के अंतर का क्रान्तिक अनुपात 1.53 है, यह मूल्य 0.01 विश्वास स्तर के मूल्यों 2.61 से कम है। अतः यह कहा जा सकता है कि दोनों समूहों के मध्यमानों में सार्थक अंतर नहीं है।

शोध अध्ययन के निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-अध्ययन के मुख्य निष्कर्षों का उल्लेख इस प्रकार है:

1. जोधपुर जिले के सरकारी, निजी अनुदानित एवं निजी गैर- अनुदानित सीनियर सैकण्डरी विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों (पुरुष एवं महिला संयुक्त क्षेत्र) के व्यावसायिक दबाव की गणना करने पर यह ज्ञात होता है कि इन अध्यापकों में व्यावसायिक दबाव निम्नस्तर का है अर्थात् वे निम्न व्यावसायिक दबाव से पीड़ित हैं।

2. सरकारी, निजी अनुदानित एवं निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों के आँकड़ों के विश्लेषण से यह प्रकट होता है कि निजी गैर-अनुदानित विद्यालय के अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव का मध्यमान 121.08 है जो कि सरकारी एवं निजी अनुदानित विद्यालयों के अध्यापकों के मध्यमान से अधिक है। इससे यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि निजी गैर-अनुदानित विद्यालयों के शिक्षक सरकारी एवं निजी अनुदानित विद्यालयों के अध्यापकों की अपेक्षा अधिक व्यावसायिक दबाव महसूस करते हैं।

3. जोधपुर जिले के सरकारी, निजी अनुदानित एवं निजी गैर-अनुदानित सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों में कार्यरत पुरुष अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव के आंकड़ों का विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि पुरुष अध्यापक निम्न व्यावसायिक दबाव महसूस करते हैं। साथ ही यह अवलोकन किया गया कि निजी गैर-अनुदानित विद्यालय के पुरुष अध्यापक के व्यावसायिक दबाव का मध्यमान 120.02 है जो कि अन्य दोनों विद्यालयों से अधिक है। इससे यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि निजी गैर-अनुदानित विद्यालय के पुरुष अध्यापक

सरकारी एवं निजी अनुदानित विद्यालय के पुरुष अध्यापकों की तुलना में व्यवसायिक दबाव से अधिक पीड़ित हैं।

4. तीनों प्रकार के विद्यालयों में कार्यरत महिला अध्यापिकाओं के व्यावसायिक दबाव के अंकों से ज्ञात होता है कि इनमें व्यावसायिक दबाव का स्तर निम्न है लेकिन निजी गैर-अनुदानित महिला अध्यापिकाओं में सरकारी एवं निजी अनुदानित विद्यालय की महिलाओं की तुलना में व्यावसायिक दबाव कुछ अधिक है।

5. तीनों प्रकार के विद्यालयों के व्यावसायिक दबाव के अंकों का विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि इन विद्यालयों की महिला अध्यापिकाएँ , पुरुष अध्यापकों की तुलना में व्यावसायिक दबाव से ज्यादा ग्रसित हैं।

6. सरकारी, निजी अनुदानित एवं गैर-अनुदानित विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों एवं महिला अध्यापिकाओं द्वारा व्यावसायिक दबाव पर प्राप्त मध्यमानों में सार्थक अंतर नहीं है। अत: यह कहा जा सकता है कि तीनों प्रकार के विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों एवं महिला अध्यापिकाओं के व्यावसायिक दबाव में कोई अंतर नहीं है।

7. सरकारी, निजी अनुदानित एवं गैर-अनुदानित विद्यालयों के अध्यापकों (पुरुष एवं महिला संयुक्त क्षेत्र)के व्यावसायिक दबाव के मध्यमानों की सार्थकता 0.01 विश्वास स्तर पर असार्थक है। अत: यह कहा जा सकता है कि सीनियर सैकण्डरी विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव में कोई अंतर नहीं है।

8. अध्यापकों के व्यावसायिक दबाव के कुल 12 आयामों/कारकों का अवलोकन करने पर निम्नलिखित पाँच कारक अध्यापकों में व्यावसायिक दबाव उत्पन्न करने वाले मुख्य कारण के रूप में प्रकट हुए हैं:

    1. कार्य-अधिभार (वर्कओवरलोड) प्रथम कारण
    2. समूह एवं राजनीतिक दबाव (अनरीजनेबल ग्रुप एंड पोलीटीकल प्रेशर्स) द्वितीय कारण
    3. कार्य- संघर्ष (रोल कानफ्लिक्ट) तृतीय कारण
    4. साथी अध्यापकों से खराब संबंध (पूअर पीअर रिलेशन) चतुर्थ कारण
    5. निम्न सहभागिता (अण्डर पार्टिसिपेशन)पचंम कारण

9. इस शोधकार्य से यह निष्कर्ष प्रकट हुआ है कि शिक्षकों में कार्य -अधिभार (वर्क ओवरलोड) व्यावसायिक दबाव का प्रमुख कारण है। अत: विद्यालयों में प्राचार्यों/ प्रधानाध्यापकों को अध्यापकों के कार्य- अधिभार समस्या पर गम्भीरता से विचार कर उसके समाधान हेतु उपयुक्त कदम उठाने चाहिए।

10. तीनों प्रकार के विद्यालयों के अध्यापक व्यावसायिक दबाव से पीड़ित हैं जो कि एक गम्भीर सोच का विषय है। इस दृष्टि से शैक्षिक प्रशासकों एवं प्रबंधकर्त्ताओं द्वारा अपने संस्थानों में व्यावसायिक दबाव के कारणों का पता लगाकर इस समस्या के समाधान हेतु प्रयास किए जाने चाहिए क्योंकि व्यावसायिक दबाव का अध्यापकों के स्वास्थ पर बुरा प्रभाव पड़ता है एवं सम्पूर्ण संस्थान की कार्यक्षमता प्रभावित होती है।

सदंर्भ

अचमम्बा, बी., गोपीकिशन, के. (1993), ''*लोकस ऑफ कण्ट्रोल एंड ऑरगेनाईजेशनल रोल स्ट्रेस अमंग कॉलेज टीचर्स*'' एकसपैरीमेन्टस इन एजुकेशन, वोल्यूम 21, नं. 10 अक्टूबर

अग्रवाल, जे.सी. (1995), ''*एसेन्शीयल ऑफ एजूकेशनल साइकोलोजी*'' विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा. लि.

अग्रवाल , वाई.पी. (1988)ए ''*स्टेटीस्टिक्स, मैथड्स कनसैपटस, एपलीकेशन एंड कम्प्यूटेशन*'' स्टर्लिंग पब्लिकेशन, न्यू देहली।

करलिंगर, एफ. एम. (1978),''*फाउण्डेशन ऑफ बिहेवीरल रिसर्च*'' न्यूयार्क यूनिवर्सिटी, सुरजीत पब्लिकेशन्स, कमला नगर, दिल्ली।

कूपर कैरी.एल एवं कैली माईक (1993), ''*ऑकूपेशनल स्ट्रेस इन हैड टीचर्स: ए नेशनल यू. के. स्टडी*'' जनरल ऑफ एजुकेशनल साइकोलोजी, 63 (1)

कुमार रेड्डी बी. एम एवं श्रीनिवास पी.बी. (1996-97), ''*दी इम्पैक्ट ऑफ जेण्डर एंड स्ट्रेस ऑन टीचर इफेक्टीवनेस*'' जनरल ऑफ एजुकेशन एंड सोईकोलोजी, वोल्यूम 54-55 नवम्बर 3,4 एंड 1 मार्च, अप्रेल।

कॉकबर्न, एन.डी. (1996), ''*प्राइमरी टीचर्स नॉलेज एंड एक्वीजीशन ऑफ स्ट्रेस रीलिवींग स्ट्रेटीजीज*'' ब्रिटीश जनरल ऑफ अजुकेशनल साइकोलोजी, वोल्यूम 66, पार्ट 3 सितम्बर।

गैरिट, एच.ई (1996),''*स्टेटीस्क्स इन साइकोलोजी एंड एजुकेशन*'' वकील्स केफर एंड सीमेन्स प्रा. लि. मुम्बई।

गुलहाने, एल.गजानन (2004), ''*इवेलूएशन ऑफ डिफिकल्टीज ऑफ टीचर्स इन नवोदया विद्यालयस्*'' जनरल ऑफ इण्डियन एजुकेशन, वोल्यूम 29, नं. 4 फरवरी।

चौहान एस.एस. (1990), ''*एडवांस एजुकेशनल साईकोलॉजी*'' विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नई दिल्ली।

चोपड़ा, रविकांत (2002), ''*प्राइमरी स्कूल टीचर्स इन हरयिाणा– एक्सप्लोरेशन्स इन टू देयर वरकिंग कण्डीशन्स*'' इण्डियन एजुकेशनल रिव्यू, वोल्यूम 38 नं. 2, जुलाई।

चित्तौड़ा, शशि (2005), ''*राजकीय प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों की समस्याओं का अध्ययन*'' प्राइमरी शिक्षक, वोल्यूम 3 नं. 1 जनवरी।

ढौंढियाल, सच्चिदानन्द एवं फाटक, ए.बी (1982), ''*शैक्षिक अनुसंधान का विधिशास्त्र*'' राजस्थान हिंदी ग्रन्थ आकदमी, जयपुर।

पाण्डे, एस (1988), ''*सोरसेज एंड मेनीफेसटेशन ऑफ स्ट्रेस अमंग टीचर्स, लोकमान्य शिक्षक*'', वोल्यूम 12।

पीथर्स, आर.टी. एंड फोरगरेटी, जी. जे (1995), ''*ऑकूपेशनल स्ट्रेस अमंग वोकेशनल टीचर्स*'' ब्रिटिश जनरल ऑफ एजुकेशनल साइकोलोजी, वोल्यूम 65 पार्ट 1 मार्च।

पाण्डे, राकेश एंड त्रिपाठी, सीमा (2002), ''*रोल ऑफ सोशियल सपोर्ट इन जॉब स्ट्रेस एंड बर्नआउट रिलेशनशिप*'' इण्डियन जनरल ऑफ एपलाइड साईकोलोजी, वोल्यूम 39, अप्रैल।

पाण्डे, रुचि (2003), ''*ए स्टडी ऑफ जॉब स्ट्रेस अमंग सैकण्डरी स्कूल टीचर्स इन कानटेक्स ऑफ ऑरगेनाईजेशनल क्लाईमेट*'' इण्डियन जनरल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च (22)।

पाण्डे, सरोज (2004), ''*कॉफिल्क्ट मैनजमैन्ट एंड स्ट्रेस अमंग स्कूल टीचर्स*'' न्यू फ्रण्टियर्स इन एजुकेशन, वोल्यूम 34।

बॉयल, जी.जे बोर्ग, एम. जी फॉलजन, जे. एम. एंड बागलाओनी (1995), ''*ए स्टक्चरल मॉडल ऑफ दी डायमेन्सन्स ऑफ टीचर्स स्ट्रेस*'' ब्रिटिश जनरल ऑफ एजुकेशनल साईकोलोजी, वोल्यूम 65 पार्ट 1 मार्च।

बोर्ग, मार्क. सी एंड राईडिंग रिचर्ड, जे(1993), ''*टीचर स्ट्रेस एंड कॉगनीटिव स्टाइल*'' ब्रिटिश जनरल ऑफ एजुकेशनल साईकोलोजी, वोल्यूम 63 नं. 2।

भाराथी, टी. अरुणा एंड रेड्डी, एन. वी.वाणी (2002), ''*सोरसेज ऑफ जॉब स्ट्रेस अमंग प्राइमरी स्कूल टीचर्स*'' जनरल ऑफ कम्यूनिटी गाइडेन्स एंड रिसर्च वोल्यूम 19 (2)

राव, डॉ.वी. एन. एवं पार्थसारथी, डॉ आर (2001), ''*टीचर्स स्ट्रेस सम सजेशन्स फार इफेक्टिव कोपिंग*'' दी एजुकेशनल रिव्यू, दिसम्बर।

वीयरलिंग, ईडी, डी (1996), ''*पैटर्न ऑफ स्ट्रेस अमंग टीचर्स*'' डिसरटेशन एब्सट्रेक्टस इण्टरनेशनल, वोल्यूम 57, नं. 12 जून।

सुब्रमण्यम, डॉ एस एवं रामादेवी एस. (1997), ''*स्ट्रैस अमंग कॉलेज टीचर्स*'' एक्सपेरीमेन्टस इन एजूकेशन, वोल्यूम 25 (3)।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 2, अगस्त 2007

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की पर्यावरण संरक्षण हेतु जागरूकता का अध्ययन

महेश कुमार मुछाल*

प्रस्तावना

पर्यावरण शब्द परि तथा आवरण की संधि से बना है जिसका अर्थ होता है- चारों ओर का वातावरण। हमारे ओर जो कुछ व्याप्त है। वहीं पर्यावरण है, हमारे चारों ओर भूमि, वन, जल, जीव-जन्तु, मनुष्य व मनुष्य की क्रियाएँ वायु आदि विद्यमान है, ये सब मिलकर पर्यावरण का निर्माण करते हैं। मोटे तौर पर पर्यावरण के दो भाग किये जा सकते है- प्राकृतिक पर्यावरण तथा मानवीय पर्यावरण। तथा मानव के कार्य, मानव निर्मित वस्तुएं, मानव का स्वभाव, विचार, रीति-रिवाज आदि मिलकर मानवीय पर्यावरण का निर्माण करते हैं। प्राकृतिक पर्यावरण पर ही मानवीय पर्यावरण निर्मित होता है।

प्राकृतिक पर्यावरण में एक कुदरती व्यवस्था कायम रहती है। एक संतुलन कायम रहता है। मानवीय पर्यावरण के अनुकुल विकास हेतु इस संतुलन का बना रहना आवश्यक है। परंतु दुखद स्थिति यह है कि मनुष्य अपने निजी स्वार्थ के लिए प्राकृतिक पर्यावरण के घटकों का अविवेकापूर्ण दोहन कर रहा है। परिणाम-स्वरूप आज प्राकृतिक पर्यावरण में व्याप्त कुदरती व्यवस्था बिगड़ गयी है जिससे न केवल मनुष्य का बल्कि सम्पूर्ण जीव-जगत का अस्तित्व ही खतरें में पड़ गया है।

पर्यावरण में विकार उत्पन्न होना पर्यावरण प्रदुषण है। दूसरे अर्थों में पर्यावरण का संतुलन विगड़ जाना ही पर्यावरण प्रदूषण है।

---

* वरिष्ठ प्रवक्ता, अध्यापक प्रशिक्षण विभाग, दिगम्बर जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़ौत (बागपत)

पर्यावरण प्रदूषण की स्थिति

प्राकृतिक संसाधन किसी राष्ट्र की विरासत होते हैं। इन संसाधनों में भूमि, जल, वन, अन्य जीव एवं वायु हैं। हमारे अस्तित्व के लिए वनों का होना बहुत आवश्यक है। पहले हमारे देश में वनों का भंडार था। हम अपनी अनेक आधारभूत आवश्यकताओं के लिए वनों पर निर्भर रहते हैं और आज भी है। ज्यों-ज्यों हमारी जनसंख्या बढ़ती गयी, त्यों-त्यों हम विकास के मार्ग में आगे बढ़ते गए और वनों का विनाश भी करते गये। आज स्थिति यह आ गई है कि देश में वन क्षेत्र मानक कम हो गये हैं, फिर भी हम प्रति वर्ष 48 हजार हेक्टेयर वन क्षेत्र नष्ट करते जा रहे हैं। इस कारण मिट्टी का कटाव बढ़ गया है, जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट होती जा रही है। वनों के कटाव से बाढ़ व अकाल की स्थितियाँ बढ़ती जा रही हैं।

भूमि (मिट्टी) हमारे जीवन का आधार है। हमारे देश की 75 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या किसी न किसी रूप से मिट्टी पर आश्रित है। इतना ही नहीं कुल राष्ट्रीय आय का लगभग 50 प्रतिशत भाग मिट्टी से संबंधित व्यवसाय से प्राप्त होता है। लेकिन आज हमारी मिट्टी भी प्रदूषण की गिरफ्त में आ चुकी है। आज हम अधिक से अधिक अनाज उत्पन्न करने की कोशिश में रासायनिक खादों एवं कीटनाशक दवाओं का बेतहाशा प्रयोग कर रहे हैं। इसका प्रभाव हमारे स्वास्थ पर पड़ रहा है और इन जीवन रसायनों के प्रयोग से प्रति वर्ष लगभग 50 हजार व्यक्ति काल कलवित हो रहे हैं।

हमारी नदियों का पवित्र जल भी शुद्ध नहीं रह गया है। महानगरों का गंदा पानी हमारी नदियों में आ रहा है। इसलिए नदियों के जल की गुणवत्ता क्षीण होती जा रही है। यही जल हमारी मिट्टी में जाता है। यही जल हमारे पशु पीते हैं। और कभी कभार हम भी पीते हैं, इसके कारण कई प्रकार की व्याधियों का जन्म हो रहा है। जल के अविवेक पूर्ण उपयोग के कारण हमारे नलकूप बेकार हो गये हैं। इसलिए जल प्रदूषण एवं जल की कमी की समस्या उत्पन्न हो गयी है। इस समस्या के निवारण में अरबों रुपये व्यय किए जा रहे हैं।

महानगरों में औद्योगिक विस्तार उन गांवों में नगरीयकरण के विस्तार और मोटर गाड़ियों के कारण हमारे वायुमंडल में अनेक विशैली गैसों का प्रवेश हो चुका है जो हमारे कवच स्वरूप ओजोन परत को क्षति पहुंचा रही हैं। आज हमारे वायुमंडल इतना प्रदूषित हो गया है कि दिल्ली, मुंबई, कलकत्ता, कानपुर जैसे औद्योगिक महानगरों

में स्वच्छ वायु में श्वास लेना दुर्लभ हो गया है। टाटा ऊर्जा अनुसंधान संस्थान ने अनुमान लगाया कि प्रतिवर्ष लगभग 22 लाख व्यक्ति आंतरिक वायु प्रदूषण के कारण मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं।

पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता

पर्यावरण प्रदूषण का गहराई से जायजा लेने के प्श्चात जीने योग्य पर्यावरण के निर्माण हेतु सरकार द्वारा प्रभावी कदम उठाये गए हैं। इससे बढ़कर आवश्यकता है- समाज में पर्यावरण के प्रति संचेतना जागृत करने की। हमें एक ऐसी सेना की जरूरत है जो पर्यावरण को आने वाले प्रदूषण की गिरफ्त में आने से बचाये। इसलिए यह जरूरी है कि पर्यावरण शिक्षा के माध्यम से ही पर्यावरण संरक्षण हेतु सेना का निर्माण करें। हम सभी स्तरों पर शिक्षा में पर्यावरण को समाहित कर पर्यावरण के विभिन्न पक्षों जैसे- पर्यावरण क्या है? पर्यावरण प्रदूषण क्या है? प्रदूषण के कारण क्या हैं? हमारे जीवन पर इसका प्रभाव क्या है? एवं इसे दूर करने के उपाय क्या हैं? आदि को सम्मिलित करें। इसलिए हमारी शिक्षा-नीति में भी पर्यावरण शिक्षा (संचेतना) पर विशेष बल दिया गया है।

प्राइमरी विद्यालय स्तर पर बालक, विद्यालय तथा समाज एवं परिवार में जो कुछ देखता है, समझता है, उसकी नकल करता है। यही से उसका व्यवहार आरम्भ होता है। वे प्रकृति की रहस्मयी बातों को जानने के उत्सुक होते हैं। इस अवस्था में बच्चे के मन में प्रकृति के प्रति सहानुभूति के भाव जागृत किए जा सकते हैं। प्राथमिक कक्षाओं में कला, भाषा, भूगोल, विज्ञान एवं इतिहास विषयों के माध्यम से बच्चों के मन में प्रकृति के प्रति मोह उत्पन्न किया जा सकता है। भाषायी विषयों में वन, हमारी नदियों, हमारे पर्वत, हमारी मिट्टी आदि वाले पाठ ही इन विषयवस्तु के आधार पर प्रऔति के प्रति सहज ही प्रेम उत्पन्न कर सकते हैं। इतिहास के माध्यम से बच्चों को बताया जाए कि किस प्रकार के अनुकूल पर्यावरण के कारण संसार की सभ्यताएँ विकसित हुई हैं।

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी किशोरावस्था में समाज की समस्याओं के प्रति जागरूक होने लगते हैं। उनमें सामुदायिक कायक्रमों में भाग लेने के कारण नैतिकता का विकास होता है। आवश्यकता है इन प्रवृत्तियों को सुदृढ़ बनाए जाने की। इस अवस्था में विद्यार्थियों को बताया जाए कि पर्यावरण प्रदूषण क्या है? इसके कौन-कौन से कारण

हैं? प्रदूषण दूर करने के उपाय क्या हैं? प्रदूषण रोकने में प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका क्या होनी चाहिए? पर्यावरण के प्रति संचेतना जागृत करने के उद्देश्य से किशोर विद्यार्थियों से कुछ सामाजिक क्रिया-कलाप जैसे सार्वजनिक स्थलों में वृक्षारोपण, बाग बगीचों की देखभाल, सड़कों व गलियों की सफाई, पूजा स्थलों धर्मशालाओं एवं पंचायत स्थलों की सफाई व इस प्रकार के अन्य कार्य करवाये जा सकते हैं। आस-पास के ग्रामीण श्रेत्रों में जाकर स्वास्थ्य रक्षा हेतु सफाई का महत्व एवं जल का उचित प्रयोग करना आस-पास के वातावरण संबंधी जागरूकता है।

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों को यह शिक्षा दी जानी चाहिए कि वे आस-पास के वातावरण को यथा सम्भव शुद्ध बनाने का प्रयास करें। लोगों के मध्य यदा-कदा पर्यावरण की चर्चा करें। यही पर्यावरण संचेतना का कार्य महाविद्यालय स्तर पर भी एन.सी.सी., एन.एस.एस. एवं स्काउटिंग गाइडिंग शिविरों के माध्यम से किया जाता है, साथ ही विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास में भी इन पाठ्यसहगामी क्रियाओं का विशेष महत्व होता है। पर्यावरण संबंधी पोस्टर व स्लोगन लिखना, मलिन बस्तियों के लोगों से चर्चा करना इस चर्चा का उद्देश्य समाज में पर्यावरण संचेतना (जागरूकता) करना है।

आज पर्यावरण जागरूकता का महत्व इसलिए बढ़ गया है क्योंकि बालक ही समाज की रीढ़ (मेरूदंड) होता है। इसलिए बालक को इसी अवस्था में पर्यावरण के विभिन्न घटकों के मध्य संबंध का उपयुक्त ज्ञान कराया जाये जैसे-विशेषतः ग्रामीण स्तर पर बालक -बालिकाओं को पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, रात-दिन, मौसम, वायुमंडल, वायु की गुणवत्ता, जल का महत्व, जल के स्रोत, मिट्टी की गुणवत्ता, वृक्षारोपण, पशु-पक्षियों की उपयोगिता, अपना शरीर, भोजन की गुणवत्ता स्वास्थ्य और स्वच्छता, खेत-खलिहान, त्योहारों का महत्व, अपने क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति का सही ज्ञान नहीं है। यदि विद्यार्थियों को प्राथमिक-माध्यमिक स्तर पर उपयुक्त बातों का सही ज्ञान हो जाए तो वे पर्यावरण के प्रति प्रारंभ से ही सचेत हो जायेगें। वे पर्यावरण के प्रति अपने दायित्व को समझने लगेंगे जिससे भविष्य में पर्यावरण हानि की संभावना कम हो जाएगी।

शिक्षा का कार्य व्यक्तिगत स्तर से आरंभ होकर सर्वव्यापी उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है। शिक्षा उत्पत्ति व्यक्ति के चारों ओर व्याप्त पर्यावरण में होती है जिससे व्यक्ति सीखता है। पर्यावरण में अनेक उधीयक होते हैं जो मनुष्य को प्रभावित करते हैं

और उन्हें प्रत्येक क्षण नई अनुभूतियाँ प्रदान करते हैं। पर्यावरण शिक्षा इन्हीं अनुभूतियों पर आधारित होनी चाहिए।

अनेक शिक्षाविदों ने शिक्षा एवं पर्यावरण के मध्य संबंध स्थापित किया है। रेमान्ट के अनुसार ''शिक्षा विकास का वह क्रम है, जो मनुष्य को धीरे-धीरे विविध प्रकार के भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बनाता है।'' बीजिंग ने कहा कि शिक्षा का कार्य व्यक्ति का पर्यावरण के साथ संबंध स्थापित करना है, जिससे व्यक्ति एवं समाज दोनों को संतोष प्राप्त हो सके। इस प्रकार पर्यावरण के प्रति जागृति और बोध उत्पन्न करना तथा पर्यावरण समस्याओं के प्रति जागरूकता एवं संवेदनशीलता पैदा करना है। शिक्षक विद्यार्थियों का नेतृत्वकर्ता होता है जिस रूप में चाहे, उसी रूप में विद्यार्थियों को मोड़ सकता है। पाठ्यक्रमों में पर्यावरण तत्व सम्मिलित करने से बढ़कर यह है कि शिक्षक अपनी छात्र सेना के माध्यम से पर्यावरण के खिलाफ जंग छेड़कर पर्यावरण संबंधी जागरूकता विकसित कर सकते हैं। सरकार आवश्यकतानुसार पर्यावरण शिक्षा की सुविधा मुहैया करायें एवं इस विषय को शिक्षा के सभी स्तरों पर अनिवार्य करें। अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों एवं स्वयं सेवी संगठनों द्वारा पर्यावरण प्रदूषण को दूर करने हेतु सही दिशा में प्रयास किये जाएं तो वह दिन दूर नहीं, जब हमारा पर्यावरण पहले की तरह शुद्ध हो जाएगा।

पर्यावरण जागरूकता (संचेतना) हेतु शिक्षा आयोग एवं शिक्षा नीति की अनुसंशाएं

कोठारी कमीशन (1964-66) ने प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव करते हुए, छात्र के सामाजिक, भौतिक तथा जैविक वातावरण पर विशेष बल दिया।

नई शिक्षा नीति (1986) ने शिक्षा के सभी स्तरों पर छात्रों में पर्यावरण संचेतना जागृत करने के उद्देश्य से इसे पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग माना है। पर्यावरण शिक्षा को प्रारभिंक शिक्षा के साथ जोड़ा गया और इसे राष्ट्रके प्रत्येक राज्य में क्रियान्वित भी किया गया है। प्राथमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर विभिन्न विषयों की निर्धारित पाठ्यपुस्तकों में पर्यावरण संबंधी प्रत्ययों की जानकारी, प्रदूषण सुधार संबंधी विषयबिंदुओं को केन्द्रीभूत करते हुए अनेक पाठों में जोड़ा गया है जिससे 21वी शताब्दी में आने वाला

छात्र भविष्यगत नागरिक बनकर पर्यावरण सुरक्षा के दायित्व को समझ सके तथा शिक्षक, अभिभावक के सहयोग से घर व विद्यालय का वातावरण स्वच्छ एवं सुदंर बना सकें।

विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2000) पर्यावरण के प्राकृतिक और सामाजिक दोनों पक्षों, उनकी अंतर्क्रियात्मक, प्रक्रियाओं और उनसे संबंधित समस्याओं की समझ विकसित करें और ऐसे तरीके और साधन बताएं कि पर्यावरण संरक्षण किया जा सके।

- प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण अध्ययन का प्रश्न है इस स्तर पर बच्चों को ऐसे अनुभव दिए जायेंगे जो पर्यावरण में घटित होने वाली घटनाओं की चेतना और समझ उत्पन्न करने के साथ उनके सामाजिक-संवेगात्मक और सांस्कृतिक विकास में सहायक हो।
- पहली और दूसरी कक्षा में बच्चों को सम्पूर्ण पर्यावरण से परिचित कराना होगा। प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण में कोई स्पष्ट भेद करने की जरूरत नहीं है। बच्चों के निकटस्थ पर्यावरण को ही विषयवस्तु माना जाए। उसके अध्ययन के लिए कोई पृथक परिक्षेत्र नहीं होगा।
- तीसरी से पाँचवी कक्षा में प्राकृतिक और सामाजिक तत्व पृथक अध्ययन क्षेत्र के रूप में शुरू किए जाएं जो पर्यावरण अध्ययन के नाम से जाने जायेंगे। बच्चों के घर, विद्यालय और पड़ोस जैसे- आस-पास के पर्यावरण एवं परिवेश से प्रांरभ करके धीरे-धीरे राज्य और देश से उनका परिचय कराया जाए। साथ ही स्थानीय रूप से निर्मित पाठ्यचर्या के लिए पर्यावरण अध्ययन की दृष्टि से स्थानीय संसाधनों के उपयोग के लिए पूर्ण स्वायत्तता दी जानी चाहिए।
- उच्च प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण के घटक और उनकी अंतर्क्रिया का अध्ययन प्रक्रिया और प्रारूपों के अनुसार किया जाएगा। विद्यार्थियों को खोज एवं स्वेच्छा से अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया जायेगा।
- माध्यमिक स्तर पर मानव पर्यावरण में अंतर्क्रिया और पर्यावरण से जुड़े मुद्दे, उनके संसाधन और उनके विकास की प्रक्रियाएँ और प्रारूप निहित हैं।

पर्यावरण प्रदूषण की स्थिति के अन्तर्गत भूमि, जल एवं वायु प्रदूषण से कई समस्याओं का जन्म हो रहा है। इस कारण पर्यावरण जागरूकता हेतु शिक्षा आयोग एवं शिक्षा-नीतियों

में पर्यावरण शिक्षा का महत्व तथा विद्यालय स्तर पर पर्यावरण क्या है? पर्यावरण प्रदूषण क्या है? पर्यावरण प्रदूषण के परिणाम एवं इसके जीवन पर प्रभाव तथा पूर करने के उपाय क्या है? इनको ध्यान में रखते हुए पर्यावरण संचेतना हेतु आवश्यकता महसूस की जा रही है। इन्हीं के संदर्भ में प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता प्रतिपादित होती है।

अध्ययन का उद्देश्य

माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की पर्यावरण संरक्षण हेतु जागरूकता का अध्ययन करना।

उप-उद्देश्य

1. माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की पेड़-पौधों के प्रति सजगता का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की पशु-पक्षियों के प्रति सजगता का अध्ययन करना।
3. माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की जल एवं ऊर्जा संरक्षण के प्रति सजगता का अध्ययन करना।
4. माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की विद्यालय एवं स्वच्छता के प्रति सजगता का अध्ययन करना।
5. माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की खाद्य-सामग्री के प्रति सजगता का अध्ययन करना।
6. माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की आस-पास के वातावरण के प्रति सजगता का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि

शोध प्रविधि को उद्देशानुसार निम्न बिंदुओं में प्रस्तुत किया गया है:

1. जनसंख्या एवं न्यायदर्श
2. उपकरण निर्माण
3. प्रदत्तों के एकत्रीकरण की प्रक्रिया
4. प्रदत्त विश्लेषण की प्रक्रिया
5. प्रदत्त फलांकन (Data Analysis) की प्रविधि

जनसंख्या एवं न्यायदर्श

प्रस्तुत शोध अध्ययन में जनसंख्या, कक्षा 10 में अध्ययनरत विद्यार्थी हैं। इन विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया। न्यायदर्श के रूप में कक्षा 10 में अध्ययनरत राजकीय विद्यालय, समर हील, शिमला के 50 विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।

उपकरण निर्माण

प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्ता द्वारा पर्यावरण संरक्षण हेतु जागरूकता मतावली/प्रतिक्रिया मापनी का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत प्रतिक्रिया मापनी में 25 कथनों को लिया गया। इन कथनों में कथन क्रमांक 1,2,20,21,24 एवं 25 पेड़ पौधों के प्रति सजगता उप उद्देश्य क्रमांक 1 से संबंधित हैं। उप उद्देश्य 2 पशु-पक्षियों के संरक्षण से संबंधित कथन क्रमांक 3,4,15 एवं 22 हैं। उप उद्देश्य क्रमांक 3 जो जल एवं ऊर्जा संरक्षण से संबंधित हैं इसमें कुल चार कथन 9,10,11 एवं 19 हैं। उप उद्देश्य क्रमांक 4 में विद्यालय स्वच्छता से संबंधित कथन क्रमांक 7,8,16 एवं 17 हैं। उप उद्देश्य क्रमांक 5, खाद्य सामग्री के प्रति सजगता पर तीन कथन 5,6 एवं 23 हैं। तथा आस-पास के वातावरण से संबंधित कथन क्रमांक 12,13,14 एवं 18 हैं।

प्रदत्तों के एकत्रीकरण की प्रक्रिया

प्रदत्त एकत्रीकरण की प्रक्रिया में राजकीय विद्यालय समर हील, शिमला के प्राचार्य से अनुमति प्राप्त कर कक्षा 10 के विद्यार्थियों को प्रतिक्रिया मापनी भरने से पूर्व यथा निर्देश देने के पश्चात पर्यावरण सजगता मापनी प्रकाशित किया गया। इस मापनी पर मत/प्रतिक्रिया देने हेतु 20 मिनट का समय दिया गया।

प्रदत्त विश्लेषण की प्रक्रिया

प्रदत्त विश्लेषण वर्ग-प्रक्रिया के अतंर्गत सम्पूर्ण मतावली द्वारा प्राप्त प्रदत्तों का कथनानुसार सारणीयन करने के पश्चात आवृत्तियों द्वारा प्राप्त संख्या को सारणी में सामान्य प्रतिशत के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्रदत्त फलांकन की प्रविधि

इस बिंदु के अंतर्गत प्रत्येक प्रतिक्रिया को कथनानुसार आपत्तियों को ज्ञात कर सामान्य प्रतिशत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

कथनानुसार आवृत्तियों का प्रतिशत दर्शाने वाली तालिका

कथन	सहमत		असहमत		अनिश्चित	
	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
विद्यालय में पेड़-पौधों को लगाने में मेरी रुचि है।	50	100	—	—	—	—
मैं हमेशा फूलों को तोड़कर फेंकता हूँ	01	02	49	98	—	—
मैं और मेरे साथी, पशु-पक्षियों को परेशान कर आनन्द अनुभव करते हैं।	—	—	50	100	—	—
मैं पक्षियों के प्रति दया का दृष्टिकोण रखता हूँ।	49	98	—	—	01	2
मैं हमेशा खाद्य पदार्थों को धोकर ही प्रयोग करता हूँ।	48	96	01	2	01	2
मैं बारिश (वर्षा ऋतु) में पानी उबालकर पीना पसन्द नहीं करता हूँ।	14	28	34	68	02	04
विद्यालय के मैदान में यदि कूड़ा कचरा हो तो वही रहने देता हूँ।	02	04	47	94	01	02
मैं कक्षा में साफ-सफाई रखना पसन्द करता हूँ।	49	98	01	02	—	—
विद्यालय में विद्युत बल्ब व्यर्थ जल रहे हों तो स्विच बंद कर देता हूँ।	46	92	04	08	—	—

कथन	सहमत		असहमत		अनिश्चित	
	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
यदि सड़क पर व्यर्थ पानी बह रहा हो तो नल बंद कर देता हूँ।	50	100	—	00	—	—
मैं नहाने में अधिक पानी व्यर्थ करता हूँ।	—	—	48	96	02	04
बगीचे में पिकनिक मनाने के पश्चात कचरा वहीं छोड़कर आ जाते हैं।	02	04	46	92	02	04
मैं अपने घर का कचरा कभी-कभी सड़क पर फेंक देता हूँ।	01	02	47	94	02	04
मैं प्लास्टिक की पौलीथीन को नाली में फेंकता हूँ।	01	02	49	98	—	—
मैं पक्षियों को कभी दाना भी नहीं डालता।	47	94	02	04	01	02
विद्यालय में पुस्तकालय व सभा कक्ष को स्वच्छ रखने का प्रयास करता हूँ।	48	96	01	02	01	02
मेरे साथी और मैं दीवार पर व्यर्थ चित्र बनाकर गंदा करते हैं।	02	04	47	94	01	02
मैं अपने घर का कचरा पास की नदी या नहर में डालता हूँ।	—	—	49	98	01	02
मैं अपने घर में हमेशा सभी बल्ब चालू रखता हूँ।	04	08	45	90	01	02

कथन	सहमत		असहमत		अनिश्चित	
	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
हमें पेड़ पौधों से आक्सीजन प्राप्त होती है।	49	98	01	02	—	—
पीपल के पेड़ से हमेशा आक्सीजन प्राप्त होती है।	33	66	06	12	11	22
मैं पशु-पक्षियों का शिकार पसन्द करता हूँ।	01	02	48	96	01	02
मैं फलों को हमेशा धोकर प्रयोग में लाता हूँ।	47	94	03	06	—	—
अधिक पेड़ से मिट्टी के कटाव में सहायता प्राप्त होती है।	10	20	34	68	06	12
अधिक पेड़ (हरियाली) वाले स्थान पर वर्षा अधिक होती है।	47	94	—	—	03	6

विवेचना

1. विद्यालय में पेड़-पौधों को लगाने में मेरी रूचि है। इस कथन पर सभी विद्यार्थी अपनी सहमति व्यक्त करते हैं। अर्थात् कह सकते हैं कि सभी विद्यार्थियों में पर्यावरण संबंधी जागरूकता है, इसलिए वे पेड़-पौधों को लगाने में रूचि रखते हैं।
2. मैं हमेशा फूलों को तोड़कर फेंक देता हूँ, इस कथन पर 98 प्रतिशत विद्यार्थी असहमति व्यक्त करते हैं। इस आधार पर कह सकते हैं कि लगभग सभी विद्यार्थियों में पर्यावरण संबंधी सजगता पायी गयी है, तभी वे पेड़-पौधों को न तोड़कर उन्हें लगाने में रूचि रखते हैं।
3. मेरे साथी और मैं पशु-पक्षियों को परेशान करके आनंद का अनुभव करते हैं। इस कथन पर सभी विद्यार्थी असहमति व्यक्त करते हैं अर्थात् वे पशु-पक्षियों को नहीं सताकर उनसे प्रेम करते हैं जो पर्यावरण सजगता एवं संरक्षण का एक अंग है।

4. मैं पक्षियों के प्रति दया का दृष्टिकोण रखता हूँ। इस कथन पर 98 प्रतिशत विद्यार्थी सहमति व्यक्त करते हैं, जो पर्यावरण सजगता को प्रदर्शित करता है यही बात कथन 3 से भी स्पष्ट है।
5. मै हमेशा खाद्य पदार्थों को धोकर ही प्रयोग करता हूँ, इस कथन पर अधिकाशं 96 प्रतिशत सहमति व्यक्त करते हैं जो पर्यावरण सजगता का सूचक है क्योंकि खाद्य पदार्थों पर कीटनाशक दवाओं का प्रयोग किया जाता है।
6. मैं वर्षा -ऋतु में पानी को उबाल कर पीना पसंद नहीं करता हूँ, इस कथन पर भी अधिकांश 68 प्रतिशत विद्यार्थी अपनी असहमति व्यक्त करते हैं अर्थात् स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता है कि पानी उबाल कर पीना चाहिए।
7. विद्यालय के खेल के मैदान में यदि कूड़ा हो तो वहीं छोड़ देता हूँ, इस कथन पर 94 प्रतिशत विद्यार्थी असहमति व्यक्त करते हैं क्योंकि सभी विद्यार्थी पर्यावरण के प्रति जागरूक हैं।
8. मैं कक्षा में साफ- सफाई रखना पसंद करता हूँ, इस कथन पर 98 प्रतिशत विद्यार्थी सहमति व्यक्त करते हैं जो पर्यावरण सजगता का सूचक है।
9. विद्यालयच में दिन में विद्युत बल्ब जल रहे हों तो मैं स्विच बंद कर देता हूँ, इस कथन पर 92 प्रतिशत विद्यार्थी सहमति व्यक्त करते हैं जो पर्यावरण सजगता को प्रदशित करता है।
10. यदि सड़क पर व्यर्थ पानी बह रहा हो तो नल बंद कर देता हूँ, इस कथन पर शत प्रतिशत विद्यार्थी अपनी सहमति व्यक्त करते हैं जो जल संरक्षण जागरूकता को प्रदर्शित करता है।
11. मैं नहाने में अधिक पानी व्यर्थ करता हूँ, इस कथन पर 96 प्रतिशत असहमति व्यक्त करते हैं यह भी जल संरक्षण संचेतना का सूचक है।
12. बगीचे में पिकनिक मनाने के पश्चात कचरा वहीं छोड़कर आ जाते हैं, इस कथन पर 92 प्रतिशत विद्यार्थी अपनी असहमति व्यक्त करते हैं जो आस-पास के वातावरण सजगता को प्रदर्शित करता है।
13. मैं अपने घर का कचरा कभी-कभी सड़क पर फेंक देता हूँ, इस कथन पर 94 प्रतिशत विद्यार्थी असहमति व्यक्त करते हैं, इस आधार पर कह सकते हैं कि विद्यार्थी आस-पास के वातावरण को स्वच्छ रखना पसंद करते हैं।

14. मैं प्लास्टिक की पौलिथीन को नाली में फेंकता हूँ, इस कथन पर 98 प्रतिशत विद्यार्थी असहमति व्यक्त करते हैं जो पर्यावरण संरक्षण हेतु सजगता का सूचक है।
15. मैं पक्षियों को कभी-कभी दाना भी डालता हूँ, इस कथन पर 94 प्रतिशत विद्यार्थी सहमति व्यक्त करते हैं। इस आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि विद्यार्थी पक्षियों के संरक्षण के प्रति भी जागरूक है।
16. विद्यालय में पुस्तकालय व सभा कक्ष को स्वच्छ रखने का प्रयास करता हूँ, इस कथन पर 96 प्रतिशत विद्यार्थियों सहमति विद्यालय स्वच्छता हेतु सजगता को प्रदर्शित करता है कि विद्यार्थी सफाई के प्रति सचेत हैं।
17. मेरे साथी और मैं दीवार पर व्यर्थ चित्र बना कर गंदा करते हैं। इस कथन पर 94 प्रतिशत विद्यार्थी असहमति व्यक्त करते हैं अर्थात् कह सकते हैं कि विद्यार्थी स्वच्छता के प्रति सजग हैं।
18. मैं अपने घर का कचरा नदी या नहर में डालता हूँ, इस कथन पर लगभग सभी 98 प्रतिशत विद्यार्थी असहमति व्यक्त करते हैं अर्थात् कह सकते हैं कि विद्यार्थियों में आस-पास के वातावरण का संरक्षण करने की जागरूकता है।
19. मैं अपने घर पर हमेशा बल्ब चालू रखता हूँ, इस कथन पर 90 प्रतिशत विद्यार्थी अपनी असहमति व्यक्त करते हैं, इस आधार पर कह सकते हैं कि विद्यार्थी ऊर्जा संरक्षण के प्रति भी जागरूक हैं।
20. हमें पेड़-पौधों से ऑक्सीजन प्राप्त होती है, इस कथन पर 98 प्रतिशत विद्यार्थी सहमति व्यक्त करते हैं, जो पेड़-पौधों के प्रति जागरूकता का सूचक है।
21. पीपल के पेड़ से हमेशा ऑक्सीजन प्राप्त होती है, इस कथन पर अधिकांश 66 प्रतिशत विद्यार्थी सहमति व्यक्त करते हैं, यह भी पेड़-पौधों के प्रति सजगता को प्रदर्शित करता है।
22. मैं पशु-पक्षियों का शिकार पसंद करता हूँ, इस कथन पर 96 प्रतिशत विद्यार्थी असहमति व्यक्त करते हैं जो विद्यार्थियों की वन्यप्राणियों के संरक्षण के प्रति जागरूकता को प्रदर्शित करता है।
23. मैं फलों को हमेशा धोकर प्रयोग में लाता हूँ, इस कथन पर 94 प्रतिशत विद्यार्थी सहमति व्यक्त करते हैं जो पर्यावरण जागरूकता को प्रदर्शित करता है।

24. अधिक पेड़ों से मिट्टी के कटाव में सहायता प्राप्त होती है, इस कथन पर 68 प्रतिशत विद्यार्थी असहमति व्यक्त करते हैं। इससे स्पष्ट है कि अधिक पेड़ मिट्टी के कटाव को रोकते हैं जो पर्यावरण संचेतना को दर्शाता है।
25. अधिक पेड़ (हरियाली) वाले स्थान पर वर्षा अधिक होती है। इस कथन पर 94 प्रतिशत विद्यार्थी सहमति व्यक्त करते हैं जो पेड़-पौधों के संरक्षण के प्रति जागरूकता को दर्शाता है।

निष्कर्ष

उप उद्देश्य क्रमांक एक में विद्यार्थियों की पेड़-पौधों के प्रति सजगता के अध्ययन में कथन क्रमांक 1,2,20,21,24एवं 25 के आधार पर निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि 87.5 प्रतिशत विद्यार्थियों में पेड़ पौधों के प्रति उच्च जागरूकता पायी गई, वे पेड़-पौधों को लगाने एवं व्यर्थ नहीं तोड़ने तथा पेड़-पौधों के महत्व के बारे में जानकारी संबंधी कथनों पर अपनी सकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। इससे स्पष्ट है कि सभी विद्यार्थी पर्यावरण के प्रति जागरूक हैं।

उप उद्देश्य क्रमांक दो में पशु-पक्षियों के संबंध में कथन क्रमांक 3,4,15 एवं 22 के आधार पर कह सकते हैं कि 97 प्रतिशत विद्यार्थियों द्वारा इन कथनों पर सकारात्मक स्वीकृति प्रदान की गई। इस आधार पर कह सकते हैं कि सभी विद्यार्थी पशु-पक्षियों को परेशान नहीं करते हैं उनमें दया भाव है, इसलिए शिकार नहीं करने पर वांछित प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। इस आधार पर विद्यार्थियों की पशु-पक्षियों के संरक्षण के प्रति जागरूकता है।

उप उद्देश्य क्रमांक तीन में जल एवं ऊर्जा संरक्षण से संबंधित कथनों पर 94.5 प्रतिशत विद्यार्थियों की वांछित प्रतिक्रिया प्राप्त होती है। इस आधार पर निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि जल एवं ऊर्जा संरक्षण के प्रति भी अधिक जागरूकता है, इसलिए विद्यार्थी घर एवं विद्यालय में अनावश्यक बल्ब नहीं जलाते हैं एवं पानी को व्यर्थ नहीं बहने देते हैं। इस उद्देश्य में कथन क्रमांक 9,10,11एवं 19 हैं।

उप उद्देश्य क्रमांक चार में विद्यालय एवं स्वच्छता से संबंधित चारों कथन क्रमांक 7,8,16 एवं 17 पर 95.5 प्रतिशत विद्यार्थियों की वांछित प्रतिक्रिया प्राप्त होती है। इस आधार पर कह सकते हैं कि सभी विद्यार्थी विद्यालय एवं घर पर स्वच्छता को पसंद करते हैं। वे विद्यालय तथा घर के आस-पास गंदगी नहीं करते। इस प्रकार विद्यार्थियों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता है।

उप उद्देश्य क्रमांक पाँच में खाद्य सामग्री के प्रयोग से संबंधित 86 प्रतिशत विद्यार्थियों की सकारात्मक प्रतिक्रिया कथनों की प्रकृति के अनुसार प्राप्त होती है। वे खाद्य सामाग्री को धोकर प्रयोग करते हैं एवं वर्षा ऋतु में जल उबाल कर पीते हैं। यह कथन क्रमांक 5, 6 एवं 23 की प्रतिक्रिया स्पष्ट है।

उद्देश्य क्रमांक छः में आस-पास के वातावरण से संबंधित कथनों पर वांछित प्रतिक्रिया प्राप्त होती है। इन कथनों में कथन 12,13,14 एवं 18 पर 95.5 प्रतिशत विद्यार्थियों की स्वीकृति कथनों की प्रकृतिनुसार प्राप्त है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि विद्यार्थी आस-पास के वातावरण को गंदा नहीं करते एवं स्वच्छता की भावना रखते हैं।

इस प्रकार सभी उप उद्देश्यों पर वांछित प्रतिक्रिया प्राप्त होती है। इस आधार पर कह सकते हैं कि समर हिल राजकीय विद्यालय की कक्षा 10 के छात्र पर्यावरण के प्रति जागरूक हैं तथा वे पर्यावरण संरक्षण के प्रति व्यापक क्रिया करके किसी प्रकार की क्षति न पहुँचाकर पर्यावरण संरक्षण में मदद करते हैं।

विद्यालय स्तर पर पर्यावरण जागरूकता हेतु सुझाव

1. खेलों के माध्यम से पर्यावरण सजगता उत्पन्न कर सकते हैं एवं खेलों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरण संतुलन एवं प्राकृतिक विरासत की महत्ता जैसे सम्प्रत्ययों को सहजता से सिखा सकते हैं।
2. गीत के द्वारा पर्यावरण सजगता उत्पन्न करने के लिए संगीत भी माध्यम है। विद्यालय में विभिन्न पर्वों पर पर्यावरण से संबंधित गीतों को समावेशकर पर्यावरण जागरूकता को विकसित किया जा सकता है।
3. पर्यावरण जन जागृति द्वारा- पर्यावरण संरक्षण हेतु जागृति शिविरों का आयोजन करके।
4. फिल्म प्रदर्शन द्वारा चेतना जागृत - पर्यावरण के प्रति जागृति उत्पन्न करने में फिल्म प्रदर्शन उपयोगी माध्यम हैं फिल्म द्वारा पर्यावरण प्रदूषण के कारण, मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव तथा इन प्रभाव को रोकने (निराकरण) के उपाय को प्रस्तुत कर सकते हैं।
5. पर्यावरण प्रदर्शनियों के द्वारा जन जागृति करना - पर्यावरण से संबंधित चार्ट एवं स्लोगन प्रतियोगिता का आयोजन साथ ही रैली निकाल कर जागृति कर सकते हैं।

6. पर्यटन द्वारा – शिक्षा शास्त्रियों के अनुसार भ्रमण एक महत्वपूर्ण साधन है। पर्यटन द्वारा छात्र अपने ज्ञान को प्रत्यक्ष देखकर सुदृढ़ करता है। विद्युत उत्पादन का अवलोकन जल एवं वन्य जीवों को देखकर, वनस्पतियों लताओं के द्वारा उत्पादित वस्तुओं का सूक्ष्म निरीक्षण करके बालकों में अन्वेषण प्रवृत्ति का विकास होता है।

7. सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता द्वारा – विद्यालय एवं सभी स्तरों पर पर्यावरण से संबंधित सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन कर पर्यावरण संरक्षण के प्रति चेतना को बढ़ा सकते हैं और पर्यावरण के प्रति रूचि विकसित कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

चौधरी दाताराम, पर्यावरण और मानव, विद्या मेद्य, विद्या प्रकाशन, मेरठ, वर्ष 4, अंक 35, मार्च 1999। *पर्यावरण* वर्ष 4, अंक 35, मार्च 1999

छाबड़ा प्रेम, पर्यावरण सजगता पर आर्थिक स्तर का प्रभाव, *प्राइमरी शिक्षक,* एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्लीवर्ष 26, अंक 1, जनवरी 2001

दूबे, ए.के., बच्चों में पर्यावरण संचेतना कब और कैसे, *प्राइमरी शिक्षक,* एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली वर्ष 24, अंक 2, अप्रैल 1999

मणि दिनेश, *पर्यावरण प्रदूषण एवं अम्ल वर्षा योजना,* विज्ञापन एवं प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली वर्ष 46, अंक 3, जून 2002

परमार तारा, पर्यावरण संरक्षण शिक्षा आज की आवश्यकता, *जन साक्षरता,* राज्य संसाधन केन्द्र, प्रौढ़ शिक्षा, इन्दौर, वर्ष 6, अंक 3, सितंबर 2005

श्रीवास्तव एवं राव, पर्यावरण और पारिस्थैतिकी, वसुन्धरा प्रकाशन गोरखपुर, वर्ष 2005, संस्करण पंचम

सक्सेना ए.बी., *इन्वायरमेंटल एज्यूकेशन,* नेशनल सायकोलाजिकल कार्पोरेशन, आगरा, 1986

श्रीवास्तव रत्ना, *पॉलीथीन और महिलाएं योजना,* प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली वर्ष 46, अंक 3, जून 2002

त्रिपाठी राम सूरत, *पर्यावरण संचेतना, प्राइमरी शिक्षक,* एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली वर्ष 24, अंक 3, जून 1999।

वर्मा शरत, पर्यावरण संरक्षण, संचेतना एवं संतुलन, *प्राइमरी शिक्षक,* एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली वर्ष 24, अंक 3, जून 1999

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 2, अगस्त 2007

हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

सरस्वती अग्रवाल* और रश्मि शुक्ला**

सारांश

भारत में मुख्यत: भारतीय भाषाओं या अंग्रेजी भाषा को माध्यम के रूप में स्वीकार करके विद्यार्थी औपचारिक शिक्षा ग्रहण करते हैं। मान्यता है कि भाषा का प्रभाव व्यक्ति के मूल्यों, विचारों, दृष्टिकोण व मनोवृत्ति पर पड़ता है। परिणामस्वरूप हिंदी माध्यम के विद्यार्थी अपनी संस्कृति की उच्चता को स्वीकार करते है जबकि अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों का झुकाव पाश्चात्य संस्कृति की ओर हो जाता है।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति की तुलना करना है। कानपुर नगर के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की बारहवीं कक्षा में अध्ययनरत 360 विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति का मापन करने के लिए एन. एस. चौहान द्वारा निर्मित 'सांस्कृतिक नियतत्व मापनी' का प्रयोग कर प्रदत्तों का संग्रह किया गया। आंकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष निकाला गया कि हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक है।

अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की मनोवृत्ति को उच्च स्तर की सकारात्मकता देने के लिए शोधकर्त्ताओं द्वारा महत्वपूर्ण सुझाव दिये गए हैं तथा इस कार्य में शिक्षकों की सहभागिता आवश्यक मानी गयी है।

भाषा का संस्कृति से गहरा संबंध है। व्यक्ति जिस भाषा के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करता है, धीरे-धीरे प्रत्यक्ष या अप्रत्क्ष रूप से उस भाषा से जुड़े मूल्यों को भी अपना लेता है।

* रीडर, शिक्षा विभाग, कानपुर विद्या मन्दिर महिला (पी.जी.) कालेज, स्वरूप नगर, कानपुर
** प्रवक्ता, शिक्षा विभाग, एन.एन.डी. कालेज, हर्षनगर, कानपुर

ऐसा मानना है कि विद्यार्थी अंग्रेजी माध्यम से अध्ययन करते हैं, उनमें अपने राष्ट्र और संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण बदला-सा दिखाई देता है; वे अंग्रेजी भाषा व उससे जुड़े मूल्यों को श्रेष्ठ मानने लगते हैं और उन्हीं के अनुरूप व्यवहार करने लगते हैं, क्योंकि अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों की संरचना या वातावरण इस प्रकार होता है कि विद्यार्थियों के लिए इन पाश्चात्य परम्पराओं व रीति-रिवाजों का पालन करना अप्रत्यक्षत: अनिवार्य-सा बन जाता है। उनकी वेशभूषा, आचार-विचार एवं व्यवहार पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित दृष्टिगत होने लगते हैं।

इसके विरीत हिंदी माध्यम के विद्यालयों में भारतीय संस्कृति का प्रभाव दृष्टिगत होता है; वहाँ भारतीय मूल्यों, परम्पराओं और रीति-रिवाजों का पालन किया जाता है तथा इन्हीं के अनुकूल शिक्षा दी जाती है जिससे विद्यार्थियों को भारतीय धर्म, समाज और संस्कृति का ज्ञान होता जाता है। परिणामत: हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के विद्यार्थियों में भाषा, मूल्यों, संस्कृति और राष्ट्र के प्रति विचारधारा में अंतर होना स्वाभाविक-सा प्रतीत होता है।

पूर्व में मूल्यों, संस्कृति, धर्म, परम्पराओं आदि आयामों पर शिक्षा के माध्यम के संदर्भ में विभिन्न शोध किये गये।

बोकिल (1956) द्वारा किये गये शोध अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि शिक्षा का माध्यम उपलब्धि को सार्थक रूप से प्रभावित करता है।

दवे व आनन्द (1972) ने विद्यार्थियों की मानसिक शक्ति व शैक्षिक उपलब्धि पर भाषा-भार के प्रभाव का अध्ययन किया और पाया कि मातृभाषा या अन्य भाषा (अंग्रेजी व प्रादेशिक) में शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों की शाब्दिक-अशाब्दिक बुद्धि व शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं होता है।

पाण्डेय, (1989) के शोध अध्ययन में सरस्वती विद्या मन्दिर के विद्यार्थियों में देश भक्ति और सौन्दर्यात्मक मूल्यों के प्रति मनोवृत्ति सार्थक रूप से उच्च तथा सकारात्मक प्राप्त हुई।

श्रीवास्तव व अन्य (1999) ने हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन किया जिसमें हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की तुलना में उत्तम पाया गया

चतुर्वेदी (2001) ने विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठिभूमि वाले विद्यालयों के छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व के गुण नैतिक मूल्यों और चेतना का अध्ययन किया जिसमें हिंदी माध्यम के सरस्वती शिशु मन्दिर के छात्र व छात्राओं में सृजनात्मक योग्यता, नैतिक मूल्यों और राष्ट्रीय चेतना सबसे अधिक पाई जबकि पश्चिमी संस्कृति के विद्यालयों के विद्यार्थी इस दृष्टि से द्वितीय स्थान पर पाए गए।

पाण्डेय, (2002) ने अपने शोध अध्ययन में हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के छात्र-छात्राओं की विज्ञान विषय की उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया ।

श्रीवास्तव व अस्थाना (2002) ने शोध के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि हिंदी माध्यम में अध्ययनरत किशोरों में अंग्रेजी माध्यम के किशोरों की अपेक्षा अधिक धार्मिक मूल्य होते हैं।

अग्रवाल व शुक्ला, (2002) के शोध अध्ययन में हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के भारतीय संस्कृति संबंधी ज्ञान की तुलना की गई जिसमें हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों का भारतीय संस्कृति ज्ञान अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की तुलना में उच्च प्राप्त हुआ।

अत: प्रस्तुत शोध का उद्देश्य हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति की तुलना करना।
2. हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति की तुलना करना।
3. हिंदी व अंग्रेजी माध्यम की विद्यालयों की छात्राओं की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति की तुलना करना।
4. विद्यालयों व विद्यार्थियों को भारतीय संस्कृति के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने के संबंध में सुझाव देना।

शोध परिकल्पनाएँ

1. हिंदी माध्यम के विद्यालयों के विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक है।
2. हिंदी माध्यम के विद्यालयों के छात्रों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक है।
3. हिंदी माध्यम के विद्यालयों के छात्राओं की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों की छात्राओं की अपेक्षा अधिक सकारात्मक है।

शोध में प्रयुक्त विधि

विषय व स्वरूप के आधार पर शोध में सर्वेक्षण अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया।

न्यादर्श

शोध के न्यादर्श में कानपुर नगर के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की कक्षा 12 के 360 विद्यार्थियों का चयन किया गया।

विद्यालयों का चयन

जिला विद्यालय निरीक्षक, कानपुर नगर कार्यालय से प्राप्त सूची के आधार पर कुल 337 विद्यालयों में 295 हिंदी माध्यम व 42 अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय प्राप्त हुए। लाटरी विधि द्वारा तीनों श्रेणियों (हिंदी माध्यम के सरकारी, सहायता प्राप्त, पब्लिक स्कूल) व (अंग्रेजी माध्यम के मिशनरी, सेन्ट्रल, पब्लिक स्कूल) के कुल 15 विद्यालयों का चयन किया गया।

छात्रों का चयन

चयनित विद्यालयों की कक्षा 12 के उपस्थिति रजिस्टर से हिंदी माध्यम के विद्यालयों में से कुल 180 विद्यार्थियों (90 छात्र, 90 छात्राएं) अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में से 180 विद्यार्थियों (90 छात्र, 90 छात्राएं) का चयन लाटरी विधि द्वारा किया गया। इस प्रकार कुल 360 विद्यार्थियों का चयन अध्ययन हेतु किया गया।

न्यादर्श का वितरण

N = 360

शिक्षा का माध्यम / विद्यार्थी	हिन्दी माध्यम	अंग्रेजी माध्यम	योग
छात्र	90	90	180
छात्राएं	90	90	180
योग	180	180	360

प्रयुक्त उपकरण

विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति का मापन करने के लिए एन.एस. चौहान (1982) द्वारा निर्मित 'सांस्कृतिक नियतत्व मापनी' का प्रयोग किया गया। इस मापनी में 40 पद व 7 मापन बिंदु हैं। परीक्षण का विश्वसनीयता गुणांक 0.81 है तथा वैधता गुणांक 0.63 है।

आंकड़ों का संग्रहण

चयनित विद्यालयों के प्रधानाचार्यगण को शोध के उद्देश्य से परिचित कराया गया तथा उनकी अनुमति लेकर वहाँ के शिक्षकों के सहयोग से विद्यार्थियों से 'सांस्कृतिक नियतत्व मापनी' को भरवाया गया तथा समय समाप्त होने पर परीक्षण प्रपत्र वापस ले लिए गए।

फलाकंन

'सांस्कृतिक नियतत्व मापनी' सात बिंदु मापक हैं जिसमें 'बिल्कुल नहीं' के लिए 0 'बहुतकम' के लिए 1 'कम' के लिए 2 'साधारण' के लिए 3 'अधिक' के लिए 4 'अत्याधिक' के लिए 5, 'पूर्ण रूप से सहमत' के लिए 6 अंक दिए गये। सभी पदों को जोड़कर प्रत्येक विद्यार्थी के लिए कुल प्राप्तांक ज्ञात किए गए। इस मापनी में नकारात्मक मूल्यांकन का प्रावधान नहीं है। न्यूनतम अंक '0' और अधिकतम अंक '240' है।

प्रदत्तों का सांख्यिकीय विश्लेषण तथा विवेचन

प्राप्त आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण निम्न शून्य परिकल्पनाओं के आधार पर किया गया:

1. हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।
2. हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के छात्रों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।
3. हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के छात्राओं की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है।

शून्य परिकल्पनाओं का परीक्षण करने के लिए मध्यमानों के मध्य अंतर की तुलना क्रान्तिक अंतर से की गई।

हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति संबंधी मध्यमानों के बीच अंतर व क्रान्तिक अंतर को तालिका 1 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका–1

भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति के संदर्भ में हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की तुलना

समूह	मध्यमान	मध्यमानों के बीच अन्तर	अन्तर की प्रामा. त्रुटि	स्वतंत्रता के अंश (df)	क्रांतिक अन्तर .05 स्तर	निष्कर्ष
हिन्दी माध्यम	144.97	10.10	2.560	358	5.035	.05 स्तर पर सार्थक
अंग्रेजी माध्यम	134.87					

तालिका 1 में हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के विद्यार्थियों का भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति संबंधी मध्यमान क्रमशः 144.97 तथा 134.87 हैं। दोनों मध्यमानों के बीच 10.10 अंक का अंतर है। अंतर की सार्थकता की जांच करने के लिए क्रान्तिक अंतर से तुलना की गई जिसमें पाया गया कि हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के मध्यमान का अंतर (10.10) क्रान्तिक अंतर (5.035) से अधिक है अतः यह 0.05 स्तर पर सार्थक है।

निष्कर्षतः शून्य परिकल्पना 'हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है', .05 स्तर पर अस्वीकृत की गई तथा शोध परिकल्पना हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक है, स्वीकृत की गई।

हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति संबंधी मध्यमानों के बीच अंतर व क्रान्तिक अंतर को तालिका 2 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका–2

भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति के संदर्भ में हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के छात्रों की तुलना

समूह	मध्यमान	मध्यमानों के बीच अन्तर	अन्तर की प्रामा. त्रुटि	स्वतंत्रता के अंश (df)	क्रांतिक अन्तर .05 स्तर	निष्कर्ष
हिन्दी माध्यम के छात्र	151.65	17.88	3.620	178	7.121	.05 स्तर पर सार्थक
अंग्रेजी माध्यम के छात्र	133.77					

तालिका 2 प्रदर्शित करती है कि हिंदी माध्यम के छात्रों का मध्यमान 133.77 है, दोनों मध्यमानों के बीच 17.88 का अंतर है। अंतर की सार्थकता की जांच करने के लिए क्रान्तिक अंतर से तुलना करने पर पाया गया कि मध्यमानों के बीच का अंतर (17.88) क्रान्तिक अंतर(7.121) से अधिक होने के कारण 0.05 स्तर पर सार्थक है।

निष्कर्षत: शून्य परिकल्पना ' हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के छात्रों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है', .05 स्तर पर अस्वीकृत की जाती है तथा शोध परिकल्पना' हिंदी माध्यम के विद्यालयों के छात्रों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति, अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के छात्रों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक है, पुष्ट की गई।

परिणाम यह दर्शाते हैं कि-

(1) हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक है।

(2) हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों, विशेषकर छात्रों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक है।

हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति में अपेक्षाकृत अधिक सकारात्मक होने के कारण हैं-

1. विद्यार्थियों को परिवार व विद्यालय में पूर्ण रूप से एक ही प्रकार का वातावरण मिलता है।
2. परिवार में भारतीय संस्कृति से प्रभावित सभी क्रियाएं, जैसे-रहन-सहन, भाषा, व्यवहार, आचार-विचार, मूल्यों आदि का प्रभाव विद्यार्थी पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है।
3. भारतीय संस्कृति से संबंधित विभिन्न क्रियाएं विद्यालय में प्रमुखता से आयोजित की जाती है।
4. परिवार व विद्यालय के वातावरण में यह सामंजस्य भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी मनोवृत्ति में संघर्ष या संशय नहीं उत्पन्न करता है।

5. अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों को परिवार में तो भारतीय संस्कृति का वातावरण मिलता है लेकिन विद्यालय में पाश्चात्य संस्कृति का प्रभुत्व दिखाई देता है। जिससे विद्यार्थियों के विचारों में संघर्ष की स्थिति बनी रहती है। परिणामत: भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी मनोवृत्ति हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों की अपेक्षा कम सकारात्मक होती है।

हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति संबंधी मध्यमानों के बीच अंतर व क्रान्तिक अंतर को तालिका 3 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका-3

भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति के संदर्भ में हिंदी व अंग्रेजी माध्यम की छात्राओं की तुलना

समूह	मध्यमान	मध्यमानों के बीच अन्तर	अन्तर की प्रामा. त्रुटि	स्वतंत्रता के अंश (df)	क्रांतिक अन्तर .05 स्तर	निष्कर्ष
हिन्दी माध्यम के छात्राएं	138.30	2.34	3.620	178	7.121	.05 स्तर पर सार्थक
अंग्रेजी माध्यम के छात्राएं	135.96					

तालिका-3 में हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों की छात्राओं की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति संबंधी मध्यमान 138.30 तथा 135.96 प्रदर्शित करते हैं, दोनों मध्यमानों के बीच 2.34 का अंतर पाया गया। अंतर की सार्थकता की जांच करने के लिए क्रान्तिक अंतर से तुलना की गयी जिसमें पाया गया कि छात्राओं के मध्यमानों के बीच का अंतर (2.34), क्रान्तिक अंतर (7.121) से कम होने के कारण .05 स्तर पर सार्थक है।

निष्कर्षत: शून्य परिकल्पना, 'हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के छात्राओं की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं है', .05 स्तर पर अस्वीकृत हुई तथा शोध परिकल्पना 'हिंदी माध्यम के विद्यालयों की छात्राओं की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के छात्रों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक है, अस्वीकृत हुई।

दोनों माध्यम की छात्राओं की भारतीय संस्कृति के प्रति सकारात्मक मनोवृत्ति में महत्वपूर्ण अंतर नहीं है क्योंकि–

1. छात्राएं माँ के सम्पर्क में अधिक रहती हैं।
2. पारिवारिक क्रियाओं व आयोजनों में सक्रिय सहयोग करती हैं।
3. उनमें पर्वों को विधिवत् आयोजित करने, धार्मिक अनुष्ठानों में उत्साहपूर्वक हिस्सा लेने में रुचि होती हैं।

अत: विद्यालय का वातावरण घर के वातावरण से कुछ भिन्न हो तो भी छात्राएं उससे अधिक प्रभावित नहीं होती हैं।

निष्कर्षत: हिंदी व अंग्रेजी माध्यम की छात्राओं की मनोवृत्ति भारतीय संस्कृति के प्रति समान रूप से सकारात्मक है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध के प्रदत्तों के सांख्यिकीय विश्लेषण व विवेचना से निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए:

1. हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक है।
2. हिंदी माध्यम के छात्रों की भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति अंग्रेजी माध्यम के छात्रों की तुलना अधिक सकारात्मक है।
3. भारतीय संस्कृति के प्रति मनोवृत्ति, दोनों माध्यम की छात्राओं में समान रूप से सकारात्मक है।

दोनों माध्यम के विद्यालय के विद्यार्थी भारतीय संस्कृति के प्रति सकारात्मक मनोवृत्ति रखते हैं परंतु हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों की मनोवृत्ति अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों विशेषकर छात्रों में अधिक सकारात्मक है। अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की मनोवृत्ति को उच्च स्तर की सकारात्मकता देने के लिए आवश्यक है कि–

1. आधुनिक ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, दर्शन में भारतीय संस्कृति के योगदान से विद्यार्थियों को परिचित कराया जाय।

2. भारत के गौरवशाली अतीत की विद्यार्थियों को जानकारी दी जाय।

3. हमारी संस्कृति में निहित जनकल्याण की भावना, कर्त्तव्यपरायणता, तथा सशक्त पारिवारिक संरचना के साथ-साथ सत्य, अहिंसा, संतोष, आध्यात्मिकता के तत्वों से विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम व पाठ्यसहगामी क्रियाओं (वाद-विवाद, नाटक, अभिनय, कविता, कहानी) के द्वार परिचित कराया जाय।

4. इस कार्य में शिक्षकों की सक्रिय सहभागिता अपेक्षित है।

संदर्भ

अग्रवाल, सरस्वती व शुक्ला, रश्मि, 2002, 'हिंदी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के भारतीय संस्कृति संबंधी ज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन', अप्रकाशित शोध प्रपत्र, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर।

चतुर्वेदी अर्चना, 2001, 'पर्सनालिटी पैटर्न, मॉरल वैल्यूज एंड नेशनल अवेकनिंग अमंग स्ट्यूडेन्ट्स स्टडीईंग इन स्कूल्स ऑफ डिफरेन्ट कल्चरल एसोसिएशन', *इण्डियन जर्नल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च* 20(2), पृ0 सं0 45-51

दवे, पी.एन. व आनन्द, सी.एल., 1971, 'द लोड ऑफ लैग्वेंज लर्निंग इन्टेलीजेन्स एण्ड ऐकेडमिक एचीवमेन्ट' बुच, एम. बी. *सेकेण्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन,* 1972-78, नई दिल्ली: रा. शै.ओ. प्र.प., पृ.सं. 345

पाण्डेय विष्णु प्रकाश, 1989', 'ए स्टडी ऑफ द सरस्वती विद्या मन्दिर विद रेफरेन्स टू द स्ट्यूडेन्ट्स ऐकेडमिक एचीवमेंट एंड साइको -सोशल डेवलपमेंट' *फिफ्थ सर्वे ऑफ एजुकेशनल रिसर्च,* 1988-92, नई दिल्ली: रा. शै.ओ. प्र.प., पृ.सं. 1838

पाण्डेय, आभा, 2002,'ए स्टडी ऑफ इंग्लिश नीड्स ऑफ साइंस स्ट्यूडेंट्स एट् ग्रेजुएट लेवेल', *भारतीय शिक्षा पत्रिका,* 21 (2) पृ. सं. 40-41

बोकिल, एस. आर., 1956, 'द इम्पैक्ट ऑफ डिफरेन्ट मीडीया ऑन द परफारमेंट ऑफ स्ट्यूडेन्ट अपियरिंग फॉर द एग्जॉमिनेशन ऑफ मार्च 1955 एंड ऑलसो ऑन द परसेन्टेज ऑफ फेलियर', बुच, एम. बी, *सेकेण्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन,* 1972–78, नई दिल्ली: रा. शै.ओ. प्र. प., पृ.सं. 374

श्रीवास्तव, एस. के. व अन्य,1999, 'ए स्टडी ऑन मेन्टल ऑफ हिंदी एंड इंग्लिश मीडियम स्ट्यूडेंट', नेशनल कान्फ्रेन्स ऑन मेन्टल हेल्थ एंड सॉइकोलॉजिकल काउन्सिलिंग, *स्मारिका,* डी.जी. कालेज, कानपुर

श्रीवास्तव, सुषमा व अस्थाना, शालिनी, 2002, 'अंग्रेजी माध्यम एवं हिंदी माध्यम में पढ़ने वाले किशोरों के आत्म-प्रत्यय एवं मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन', *भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका,* 21(2) पृ. सं. 45–51

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 2, अगस्त 2007

शोध टिप्पणी/संवाद

प्रारंभिक शिक्षा में गुणवत्ता सुधार के संदर्भ में शिक्षक, समाज और शासन की भूमिका

दामोदर जैन*

प्रारंभिक धीमी गति के बावजूद बीसवीं सदी के अंतिम दशक में प्रारंभिक शिक्षा सुविधाओं का तीव्र गति से विस्तार हुआ है। यह विस्तार शासकीय और अशासकीय, दोनों क्षेत्रों में देखा जा सकता है। इस संदर्भ में मध्य प्रदेश शासन द्वारा एक कि.मी. के भीतर प्राथमिक विद्यालय और 3 कि.मी. के अंदर माध्यमिक विद्यालय खोलने, की योजना उल्लेखनीय हैं। सर्व शिक्षा अभियान अन्तर्गत शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े पन्द्रह राज्यों सहित देश के सभी अन्य राज्य भी इसी तरह की शिक्षा सुविधाओं के विस्तार में जुटे हुए हैं। 6-14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को अनिवार्य एंव नि:शुल्क प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने के लिए इस तरह के कदम उठाने के साथ-साथ बच्चों को गुणवत्ता युक्त शिक्षा देना आवश्यक है। राज्य तथा राष्ट्रीय स्तर पर किए गए अनेक शोध-परीक्षणों से यह स्पष्ट हुआ है कि शासकीय शिक्षण संस्थाओं में पढ़ने वाले बच्चे, वे निर्धारित दक्षताएँ और कौशल, जिन्हें न्यूनतम अधिगम स्तर कहा जाता है, प्राप्त करने में काफी पीछे हैं। शैक्षिक क्षेत्र में संतोषजनक न सही, फिर भी इतने बड़े निवेश का सही प्रतिफल न मिलने की स्थिति को भारत जैसे विकासशील देश के लिए नजर अंदाज करना उचित नहीं है।

शिक्षा में गुणवत्ता का अर्थ है- मानक स्तर की शिक्षा। दूसरे शब्दों में बच्चे अपनी आयु एवं कक्षा अनुसार उस स्तर की शिक्षा प्राप्त करें, जिसकी समाज अपेक्षा करता है और बच्चों को एक निश्चित आयु एवं कक्षा में आवश्यक रूप से सामान्यत: प्राप्त कर

* सदस्य, एन.सी.ई.आर.टी, महासमिति, सम्प्रति - महामंत्री, 'शैक्षिक अभिप्रेरण पुंज', एल-276, कोटरा, भोपाल (म.प्र.)

लेनी चाहिए। जब बच्चा विद्यालय में प्रवेश लेता है तब वह कोरा कागज नही होता। वह अपने परिवार और परिवेश से बहुत कुछ सीखकर आता है। विद्यालय बच्चे के पूर्व ज्ञान में कुछ और जोड़कर उसे भाषा, गणित, पर्यावरण, सामान्य ज्ञान और व्यक्तित्व विकास के गुणों के रूप में व्यवस्थित, विकसित और परिभाषित कर शिक्षा प्रदान करता है। इस शिक्षा में भौतिक ज्ञान ही नहीं, मानवीय मूल्यों का विकास भी समाहित होता है। स्वार्थ केन्द्रित, व्यक्तिगत विकास के लिए भ्रष्ट साधनों को अपनाने और देश तथा समाज के हितों को अनदेखा करने वाली वर्तमान कथित शिक्षा को गुणवत्तायुक्त शिक्षा नहीं कहा जा सकता है। भारत में बच्चों की शाला त्याग दर अधिक है और आठवीं कक्षा तक और उसके बाद 70 प्रतिशत से अधिक बच्चे, (लडकियों में यह दर और भी अधिक है) पढ़ाई छोड देते हैं। ऐसी स्थिति में हमारा दायित्व है कि प्राथमिक शिक्षा गुणवत्तायुक्त हो। प्रारंभिक शिक्षा को नींव के रूप में ही नहीं, वरन,सुसज्जित गृह के रूप में निर्मित करना होगा जिसमें बच्चे अपने जीवन का सफल निर्वाह कर सकें। गुणवत्ता युक्त शिक्षा का एक महत्वपूर्ण पक्ष बच्चों में ऐसे कौशल उत्पन्न करना भी है जिनकी मदद से वे ज्ञान के विस्फोटक विस्तार की वर्तमान स्थिति में जीवन पर्यन्त ज्ञान की सम्प्राप्ति, वृद्धि एवं अपने व्यक्तित्व का निरन्तर विकास करने में सक्षम हो सकें। आजादी के बाद हमने शिक्षा के क्षेत्र में बहुत कुछ उपलब्धियाँ अर्जित की हैं। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भी भारतीय मेधा किसी देश से पीछे नहीं है। पर यह उपलब्धियाँ उच्च शिक्षा तक सीमित है। सरकारी स्तर पर प्रारंभिक शिक्षा में बच्चों का गुणवत्ता स्तर काफी नीचे है। दूसरी ओर अशासकीय शिक्षण संस्थाओं के प्रति लोगों का मोह बढ़ता जा रहा है। इस बढ़ते मोह को रोकने की आवश्यकता भी नहीं है। शिक्षा के प्रसार में अशासकीय योगदान जितना बढ़ेगा, शासन पर उसका भार उतना ही कम होगा, पर इसके फलस्वरूप समाज में शैक्षिक वर्ग भेद उत्पन्न न हो, यह देखा जाना आवश्यक है। इसके लिए शासकीय शिक्षा का स्तर किसी प्रकार से कम नहीं होना चाहिए। कल्याणकारी शासन का लक्ष्य सुविधा सम्पन्न वर्ग नहीं, समाज का अंतिम व्यक्ति होता है। प्राथमिक स्तर पर शासकीय विद्यालयों में अधिकांशत: इसी वर्ग के बच्चे हैं, साथ ही इस वर्ग के बच्चे एक बड़ी संख्या में शिक्षा से वंचित भी हैं। वास्तविक चुनौती तो ऐसे ही बच्चों को जिस स्तर की शिक्षा दे रहा है, उसकी तुलना से अधिक पैसा उनसे बटोर रहा है। होना तो यह चाहिए कि शहरी क्षेत्रों में ये संस्थाएं स्वेच्छा से

अथवा कानून द्वारा कमजोर वर्ग के बच्चों को अपने यहाँ एक निश्चित कोटे में या अनुपात में नि:शुल्क शिक्षा प्रदान कर अपना सामाजिक दायित्व पूरा करें।

वर्तमान में शासकीय और अशासकीय शिक्षण संस्थाओं की मूल सुविधाओं और व्यवस्था-तंत्र में ज़मीन आसमान का अंतर है। अधिकांश प्राथमिक विद्यालय एक या दो शिक्षकीय हैं। एक-दो शिक्षकों द्वारा पांच कक्षाओं को पढ़ाना वैसे ही मुश्किल है, उस पर भी उन्हें (शिक्षकों को) बहु-कक्षा-शिक्षण स्थिति के अनुरूप व्यवहारिक प्रशिक्षण भी नहीं दिया जाता है। वर्तमान सेवा पूर्व या सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण में वास्तविक परिस्थितियों पर आधारित व्यवहारिक प्रशिक्षण दिया ही नहीं जाता। इसके विपरीत अशासकीय शिक्षण संस्थाओं में बहु कक्षा शिक्षण स्थिति नहीं होती। कम वेतन पर ही सही, कक्षा के लिए अलग-अलग, विषयवार, शिक्षक तथा कक्ष उपलब्ध होते हैं। शासकीय शिक्षण संस्थाओं में बहुकक्षा शिक्षण परिस्थिति के कारण योग्य शिक्षक भी अपने आपको असहाय अनुभव करते हैं। यदि बहुकक्षा शिक्षण परिस्थिति को अनिवार्य परिस्थिति मानकर उसके उपयुक्त प्रशिक्षण, शिक्षण-विधियां, सहायक शिक्षण सामग्री, पाठ्यक्रम, पाठ्य वस्तु और मूल्यांकन प्रणाली लागू कर संसाधनों का उचित नियोजन किया जाए तो सफलता अवश्य प्राप्त होगी। इस क्षेत्र में कार्य करने के लिए स्वयं शिक्षकों को आगे आना चाहिए और शासन को उन्हें अवसर, प्रोत्साहन तथा आर्थिक सहायता प्रदान करना चाहिए।

शासकीय संस्थाओं के बच्चे शिक्षा के लिए पूरी तरह विद्यालय तथा शिक्षकों पर ही निर्भर रहते हैं। इन बच्चों को अभिभावकों से शैक्षिक मदद न के बराबर मिल पाती है। मदद करना तो दूर, यह अभिभावक वर्ग बच्चों की शैक्षिक प्रगति की ओर से उदासीन भी है। दूसरी ओर अशासकीय शिक्षण संस्थाओं के बच्चों को उनके अभिभावक न केवल स्वयं पढ़ाते हैं बल्कि ट्यूशन की व्यवस्था भी करते हैं। इन बच्चों का शैक्षिक स्तर बनाए रखने में संस्था कम, अभिभावकों का योगदान अधिक रहता है। वैसे कुछ अशासकीय शिक्षण संस्थाओं को छोड़कर अधिकांश का शैक्षिक स्तर वास्तविकता से काफी दूर रहता है। संस्थागत स्तर की परीक्षाओं में बढ़ा-चढ़ाकर अंक देना, बाह्य परीक्षा व्यवस्था होने पर एन-केन प्रकारेण परिणाम प्रभावित करना और अनुचित साधनों का उपयोग किया जाना, इन अशासकीय संस्थाओं की एक कटु वास्तविकता है। फिर भी शासकीय विद्यालयों की तुलना में न्यूनतम अधिगम स्तर प्राप्त

करने में ये अधिक सफल हैं। अशासकीय शिक्षण संस्थाओं में पढ़ने वाले बच्चों को उनके अभिभावक पूरी सुविधा व सामग्री तत्काल उपलब्ध कराते हैं जबकि शासकीय शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत बच्चों में शैक्षिक गुणवत्ता स्तर प्राप्ति में एक बड़ी बाधा इन बच्चों के पास पठन-पाठन सामग्री सहित अन्य सुविधाओं का अभाव होना भी है। आर्थिकविपन्नता के साथ-साथ पालकों की उदासीनता के कारण शासकीय प्राथमिक शिक्षण संस्थाओं के बच्चों के पास पाठ्यपुस्तकें, पेन, कॉपी आदि भी नहीं होती है। इस कमी को दूर करने के लिए समर्थ पालकों को जागरूक बनाने तथा असमर्थ पालकों के बच्चों को शासन और समुदाय की मदद की आवश्यकता है। यद्यपि वर्तमान में शासन द्वारा अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़ा वर्ग के बच्चों को निःशुल्क पाठ्यपुस्तकें प्रदान की जाती हैं। परंतु कटु तथ्य यह है कि पुस्तकें कभी समय पर नहीं मिलतीं। जुलाई के प्रथम सप्ताह में ही बच्चों को पुस्तकें उपलब्ध हो सकें, ऐसी व्यवस्था अभी तक नहीं हो पाई है। इन वर्गों के बच्चों की शिक्षा के प्रति किए गए बड़े-बड़े दावों और वादों की असलियत उजागर करने के लिए यह स्थिति एक बानगी भर है। बेहतर यह होगा कि हर वर्ष लाखों रुपये की पाठ्यपुस्तकें बिना वितरित हुए और पाठ्यक्रम बदल जाने से बेकार हो गई लाखों पुस्तकों को वापस मंगाकर उनका कागज पुनर्निमाण में उपयोग कर लिया जाए। शासकीय शिक्षण संस्थाओं में पढ़ने वाले बच्चों को छात्रवृत्ति और मध्याह्न भोजन से अधिक समय पर पर्याप्त शैक्षिक सामग्री दिया जाना आवश्यक है। बेहतर तो यह होगा कि पाठ्यपुस्तकें और अन्य शैक्षिक सामग्री विद्यालय में रखी जाएं और बच्चों द्वारा उपयोग की जाए। इससे बच्चों द्वारा पुस्तकें फाड़ने और खोने आदि की समस्या तथा बस्ते से भी मुक्ति मिल सकेगी।

अशासकीय और शासकीय शिक्षण संस्थाओं के शैक्षिक स्तर में अंतर होने के और भी कई कारण हैं। इन कारणों में मुख्य है- व्यवस्था या प्रबंधन तंत्र की मानसिकता। अशासकीय स्कूलों का प्रबंधन तंत्र अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने हेतु हमेशा सजग व सतर्क रहता है। अपने लापरवाह शिक्षकों से किसी तरह का समझौता नहीं करता क्योंकि इससे उसके स्वयं के हित प्रभावित होते हैं जबकि शासकीय प्रबंधन जिस तरह आर्थिक प्रलोभन, चापलूसी तथा अन्य विभिन्न दबावों के आगे अपने कार्य के प्रति लापरवाह शिक्षकों को नजरअंदाज और प्रोत्साहित करता है, वह किसी से छुपा नहीं है। नियुक्ति, स्थापना, और स्थानान्तरण में व्याप्त भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद, एक आम बात है। इसके विपरीत अशासकीय तंत्र में अयोग्यता का कोई स्थान नहीं होता।

अशासकीय तंत्र राजनैतिक हस्तक्षेप से प्रायः मुक्त होता है। उसके शिक्षकों को किसीभी प्रकार के गैर शैक्षिक एवं गैर शिक्षकीय कार्य नहीं करने पड़ते हैं, जबकि शासकीय शिक्षकों (विशेषकर प्राथमिक) के शिक्षण समय का काफी बड़ा हिस्सा तरह-तरह के सर्वेक्षणों और कार्यालयीय कार्यों में नष्ट किया जाता है। इससे पढ़ाई का प्रवाह भंग होता है और शिक्षकों में क्षोभ उत्पन्न होता है। इस कारण से भी शासकीय विद्यालयों का शैक्षिक स्तर प्रभावित होता है।

शासकीय ग्रामीण विद्यालयों में पदस्थ शिक्षकों का एक बहुत बड़ा भाग निकटवर्ती कस्बों या नगरों से आता-जाता है। उनका यह आना-जाना 'अप-डाउन' शाला समय से नहीं अपनी सुविधा और बसों के समय से संचालित होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में पदस्थ शिक्षक वहीं रहें, इसके लिए आवश्यक परिस्थिति और मनः स्थिति बनाए बगैर शैक्षिक गुणवत्ता प्राप्त करना कठिन है। अप-डाउन करने वाले शिक्षकों के कारण स्थानीय शिक्षकों की आदतें भी खराब हो जाती हैं । शिक्षकों/शिक्षिकाओं के गांव में न रहने का प्रमुख कारण शहरी सुविधा मोह के अतिरिक्त गांवों में आवासीय और शैक्षिक सुविधा (पांचवीं/आठवीं से ऊपर) का अभाव होना है। यदि हाईस्कूल/हायर सेकेण्डरी स्तर पर बनाए गए शिक्षा संकुलों वाले ग्रामों में आवश्यक सुविधयुक्त शिक्षक आवास केन्द्रों का निर्माण किया जा सके तो इस समस्या का समाधन हो सकता है। इन आवास केन्द्रों में संकुलान्तर्गत सभी स्तरों की शालाओं के शिक्षक अनिवार्यतः परिवार सहित रहें। इन आवास केंद्रों को और भी उपयोगी बनाया जा सकता है, यदि इनमें शिक्षकों के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में पदस्थ और कार्यरत अन्य विभागों, जैसे- राजस्व कृषि, सिंचाई, पंचायत, स्वास्थ्य, विद्युत और पुलिस विभाग के कर्मचारी भी रहें। ऐसे आवास केंद्र ग्रामीण क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। सुरक्षा, सुविधा और अनुकूल वातावरण मिलने के कारण शिक्षकों और कर्मचारियों को नगरों की अपेक्षा ऐसे केंद्रों पर रहना सुविधाजनक और सस्ता पड़ेगा।

शासकीय शिक्षण संस्थाओं में शैक्षिक गुणवत्ता स्तर नीचे रहने में शिक्षण संस्थाएँ खोलने की गलत प्रक्रिया भी उत्तरदायी है। शासन द्वारा नई शैक्षिक सुविधा तो प्रदान की जाती है, पर वहाँ आवश्यक एवं न्यूनतम संसाधनों की पूर्ति नहीं होती है। पर्याप्त शिक्षक विहीन, भवन विहीन, और अन्य संसाधनों विहीन ऐसी शिक्षण संस्थाओं से गुणवत्तायुक्त शिक्षा प्राप्त करना दुष्कर कर्म है। सेवा-सुरक्षा की भावना से निश्चिंत,

राजनीतिक प्रश्रय प्राप्त आज के शिक्षकों से चुनौतिपूर्ण स्थितियों में कार्य कराने की अपेक्षा दिवास्वप्न जैसा है। अगर किसी शिक्षक में इस चुनौती को स्वीकार कर कुछ करने की इच्छा भी होती है, तो भ्रष्ट-व्यवस्था तंत्र शीघ्र ही उसको अपमान, उपेक्षा और शोषण द्वारा पीड़ित कर एक उदासीन वेतन भोगी बना देती है। मन:स्थिति के अनुकूल परिस्थिति और परिस्थिति के अनुकूल मन:स्थिति न होना शैक्षिक गुणवत्ता प्राप्ति में बाधक है। यही कारण है कि उन शासकीय शिक्षण संस्थाओं में जहाँ पर्याप्त सुविधा, भवन व शिक्षक हैं वहाँ का स्तर भी उन संस्थाओं से बेहतर नहीं हैं जहाँ इन सुविधाओं का अभाव है। पर यह स्थिति बहुत थोड़े स्थानों पर है। इन परिस्थितिजन्य कारणों को ठीक किया जाना बहुत आवश्यक है। गलत व अयोग्य व्यक्तियों का शिक्षक बन जाना, शिक्षकों का अपनी पदस्थापना वाले स्थान पर कार्य न करना, सुविधाजनक स्थानों या नगरों में केन्द्रित हो जाना, अनुचित राजनैतिक एवं संगठनात्मक संरक्षण आदि कारणों से भी शैक्षिक स्तर में गिरावट आई है। शासकीय विद्यालयों में बच्चों के शैक्षिक स्तर में कमी का एक कारण अभिभावकों की उदासीनता भी है जो उनके स्वयं अशिक्षित रहने के कारण उपजी है। ऐसे अभिभावकों को साक्षर बनाने के अभी तक के प्रयास कितने सफल हैं, यह लिखने की आवश्यकता नहीं है। विदेशी मदद से प्रायोजित साक्षरता कार्यक्रमों की सफलता संदिग्ध ही रहेगी। आज एक सेसे कार्यक्रम और एक ऐसे राष्ट्रीय जन नेता की आवश्यकता है जो क्यूबा के फिदेल कास्त्रो की तरह अपनी जनता को शिक्षा से जोड़कर उसे साक्षर ही नहीं, सुशिक्षित और चेतनावान भी बना सके। साक्षर अभिभावकों के बच्चों में शैक्षिक गुणवत्ता स्तर स्वाभाविक रूप से बढ़ेगा। चाहे तो मध्यप्रदेश ऐसे अभियान का अगुवा बना सकता है।

गुणवत्ताहीन शिक्षा, निरक्षरता की खाई को और भी अधिक चौड़ा कर रही है। समस्या के हल हेतु उसके वास्तविक कारणों की खोज आवश्यक है। फोड़े-फुंसियों का बढ़ना रक्त के दूषित होने का परिचायक है। इसके उपचार हेतु बाह्य उपचार के अतिरिक्त रक्त-शोधन की प्रक्रिया भी अपनाई जाती है। आज की शिक्षा व्यवस्था पूरी तरह दूषित हो चुकी है। अब इसका आंतरिक शोधन आवश्यक नहीं अपरिहार्य हो चुका है। जहाँ एक ओर शासन को परिस्थितियों में बदलाव लाने होंगे, वहीं शिक्षकों को अपनी मन:स्थिति में भी परिवर्तन लाना होगा। अच्छी मन:स्थिति वाले कर्मठ शिक्षक आज भी विपरीत परिस्थितियों में अपने कर्तव्य पर आरूढ़ हैं। अन्य साधनों का तो

विकल्प है, पर शिक्षक का कोई विकल्प नहीं है। यदि शिक्षक ठान लें तो कोई कारण नहीं कि शिक्षा के गिरते स्तर को न केवल रोका जा सके बल्कि ऊपर भी उठाया जा सकता है। शासन को भी शिक्षा नीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने होंगे। इस कार्य में उसे शिक्षकों की निर्णायक भूमिका बढ़ानी होगी। शिक्षा का प्रशासकीयकरण नहीं, शिक्षकीकरण करना होगा। अभी शिक्षा-नीति निर्माण में शिक्षकों का कहीं कोई योगदान नहीं है। शासन को शिक्षक-नियुक्ति, स्थानान्तरण, वेतन,पदांकन, एवं व्यवस्था में सुधार के साथ-साथ शाला संचालन, समय निर्धारण, पाठ्यक्रम, पाठ्य-वस्तु और परीक्षा आदि कार्यों में भी शिक्षकों और समाज की निर्णायक सहभागिता से बड़े और यथार्थवादी परिवर्तन करने होंगे। शिक्षकों में चिंतन चेतना और दायित्व बोध की प्रवृत्ति पैदा करनी होगी। अब शिक्षक को महज वेतन भोगी, ''सरकारी' कर्मचारी के स्थान पर जनचेतना का वाहक बनाया जाना जरूरी हो गया है।

शासन और शिक्षक की भूमिका के साथ-साथ समाज की भूमिका में भी परिवर्तन आवश्यक है। सम्पन्न वर्ग द्वारा अपनी वैकल्पिक शिक्षा व्यवस्था बनाकर संतुष्ट हो जाने की प्रवृत्ति, अत्यन्त घातक सिद्ध हो सकती है। दूसरी ओर सुविधावंचित बहुसंख्यक समाज के इस सोच को भी बदलना हो कि शासकीय संस्थाएँ केवल मध्याह्न भोजन और छात्रवृत्ति के साधन हैं, और इसके लिए बच्चे को विद्यालय में प्रवेश करा देना ही उनका अभीष्ट है। उन्हें यह बताना होगा कि शासकीय सुविधाओं की एक सीमा है, और यह सकारात्मक परिणामों के लिए है। शिक्षा का लक्ष्य केवल नौकरी पाना नहीं बल्कि आत्मिक चेतना का विकास भी है। यह मान्यता अपनाते हुए उन्हें स्वंय अपने अनावश्यक व्यय, नशा, बीड़ी, तम्बाकू, कुरीतियों पर किए जा रहे खर्च को कम या समाप्त करके बच्चो की पढ़ाई के लिए कुछ अधिक सुविधाएँ जुटाना होगा। इस कार्य में शिक्षित व्यक्तियों, स्वैच्छिक और समाज सेवी संगठनों तथा पंचायतों को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ेगी। सजग अभिभावक ही अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दिला सकते हैं। शासकीय शिक्षण संस्थाओं में पढ़ने वाले बच्चों के अभिभावकों के पास इन संस्थाओं से बच्चों को हटाने का कोई विकल्प नहीं है, पर उन्हें यह पता होना चाहिए कि वे भले ही प्रत्यक्ष रूप से सरकारी शिक्षा का प्रतिदान नहीं दे रहे हैं, पर वहाँ पढ़ाने वाले शिक्षकों, संसाधनों तथा संबंधित कर्मचारियों/अधिकारियों पर जो व्यय होता है उसमें उनका भी अंश है। वे एक उपभोक्ता की भांति संतोषजनक सेवा लेने के

हकदार हैं, परंतु इस हक के साथ-साथ उनके कुछ कर्तव्य भी हैं। वे अपने नौनिहालों के भविष्य का निर्माण और निर्धारण करने वाले इन विद्यालयों को सरकारी मानकर, सरकार के भरोसे न छोड़कर इन्हें अपना मानें। शिक्षकों के प्रति हमेशा अपना नकारातमक दृष्टिकोण रखने की अपेक्षा उन्हें सहयोग देकर प्रेरित करें। संस्था को उचित आवश्यकताओं की पूर्ति में सहयोग करें। चाहे वह आवश्यक भौतिक सुविधा संबंधी हो, चाहे शिक्षण व्यवस्था संबंधी। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ समाज की जागरूकता और सहयोग से अनेक समस्याएँ हल हुई हैं और उत्साहजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं। धर्मशालाओं, धार्मिक आयोजनों में तन, मन, धन से सहयोग करने वाली भारतीय ग्रामीण जनता यदि शिक्षा को केवल सरकार के भरोसे छोड़े हुए है या छोड़े रहती है तो इसे एक बिडम्बना ही कहा जाएगा, और इसके लिए जनता नहीं शिक्षा,धर्म तथा राजनीति से जुड़े, वे व्यक्ति भी उत्तरदायी हैं जो जनता का नेतृत्व करते हैं।

इन सब के साथ-साथ शिक्षा के सबसे महत्वपूर्ण अंग शिक्षक को भी अपनी वर्तमान स्थिति की समीक्षा करते हुए अपनी उदासीन भूमिका को बदलना होगा। उन शिक्षकों को सजग होना होगा, जो शासकीय सेवा-सुरक्षा के भरोसे रहकर अपने कर्तव्य के प्रति विमुख हैं। इस स्थिति को समाज और शासन अधिक समय तक स्वीकार नहीं करेगा। जिस डाल पर वे बैठे हैं, उसी डाल को खुद काटने की आत्मघाती प्रवृत्ति किसी के हित में नहीं है। शैक्षिक गुणवत्ता किसी एक पक्ष के एकल प्रयास से प्राप्त नहीं की जा सकती है। देश के भावी नागरिक ''बच्चे'' को ''राष्ट्र'' मानते हुए उसे केंद्र में रखकर शिक्षा के प्रति समर्पित शिक्षक, संकल्पित शासन और जागृत समाज का त्रिकोण ही शासकीय शिक्षण संस्थाओं में शैक्षिक गुणवत्ता प्राप्त करने में सफल होगा।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 2, अगस्त 2007

शोध टिप्पणी/संवाद

अशक्त बालकों के समग्र विकास में अभिभावकों व शिक्षकों की भूमिका

नरेश कुमार*

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए प्रत्येक मनुष्य क्रिया-प्रतिक्रिया व परस्पर सहयोग द्वारा व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामाजिक विकास करता है। विकास के लिए शिक्षा एक सशक्त माध्यम है। शिक्षा एक ऐसा साधन है जो न केवल व्यक्तित्व का निर्माण करता है बल्कि मनुष्य के सर्वांगीण विकास में भी सहायक है। शिक्षा न केवल विकास का माध्यम है बल्कि व्यक्ति को स्वावलम्बी बनाकर अच्छे मूल्य व संस्कार भी स्थापित करती है। शिक्षा प्रदान करने में न केवल अध्यापकों बल्कि अभिभावकों का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। अध्यापकों को यह भी देखना होता है कि किस विद्यार्थी को किस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाए क्योंकि वैयक्तिक विभिन्नता प्रकृति का नियम है। शिक्षा तभी सार्थक व सफल मानी जाती है जो वैयक्तिक विभिन्नता के आधार पर प्रदान की जाए। समाज के प्रत्येक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति से गुणों में भिन्नता पायी जाती है। अत: हर व्यक्ति की आवश्यकताएँ, आकांक्षाएँ व विशेषताएँ भी अलग-अलग होती हैं। एक गुणात्मक व अच्छी शिक्षा पद्धति वही कहलाती है जो व्यक्ति की आकांक्षाओं पर खरा उतरे। गुणात्मक व उत्कृष्ट शिक्षा पद्धति में सभी प्रकार के विद्यार्थियों का ध्यान रखा जाता है, चाहे वे प्रतिभाशाली बच्चे हों, सामान्य बच्चे हों या अशक्त, अपंग अथवा असहाय बच्चे हों। अच्छी शिक्षा पद्धति में प्रतिभाशाली व सामान्य बालकों के साथ-साथ सशक्त बालकों को सभी प्रकार की सुविधाओं, आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है ताकि ऐसे बच्चे आत्महीनता व आत्मग्लानि की भावना से ग्रस्त न हों। अशक्त बालकों को आत्मनिर्भर

* प्राध्यापक, समाज शास्त्र, जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, बीसवां मील बढ़मलिक, सोनीपत (हरियाणा)

बनाकर हम उनके आत्मविश्वास व आत्मबल में वृद्धि कर सकते हैं। अब यह प्रश्न उठता है कि अशक्त बालक किन्हें कहते हैं और उनके स्वाभिमान को कायम रखने के लिए अध्यापकों एवं अभिभावकों द्वारा क्या प्रयास किये जाने चाहिए?

अशक्तता - अर्थ एवं उसके कारण

अशक्त व सामान्य बालक में अंतर समझना हम सब के लिए बहुत ही जरूरी है। प्रकृति, वातावरण, परिवेश एवं पोषण, सभी पुरूष व स्त्रियों में शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक अंतर का कारण है। यद्यपि जन्म के उपरान्त दोनों ही समान हैं। कोई भी सामान्य मानव बीमारी, आक्रमण, दुर्घटना आदि के प्रभाव से प्रभावित हो सकता है जिसके फलस्वरूप उसमें स्थायी अथवा अस्थायी रूप से उसकी क्षमताओं, दक्षताओं, व योग्यताओं में कमी आ सकती है। कोई गर्भस्थ शिशु वशांनुक्रम जटिलताओं के कारण अथवा अपनी माँ की तनावपूर्ण व असामान्य परिस्थितियों, औषधियों के असीमित प्रयोग व कुपोषण आदि के फलस्वरूप किसी भी प्रकार की अपंगता के साथ जन्म ले सकता है। कोई भी बालक जन्म लेते समय या जन्म लेने के उपरांत भी किन्हीं कारणों व असावधानियों के फलस्वरूप संवेगात्मक तथा भावनात्क सन्तुलन खो देने के कारण भी उसके शरीर में किसी भी अंग की अशक्तता, क्षीणता या अपंगता पैदा हो सकती है। हम सभी किसी भी विशेष परिस्थिति में असहाय, अपंग व अशक्त हैं। यह बात अलग है कि हमारी अपंगता अथवा अशक्तता का स्तर इतना क्षीण होता है कि वह दिखाई नहीं देता। अत: यदि किसी व्यक्ति का व्यवहारगत विचलन किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई भी असुविधा का कारण नहीं बनता और सहनशीलता तथा स्वीकार्य सीमा तक क्षमता व सामाजिक सांमजस्य को प्रभावित नहीं करता तो वह व्यक्ति विशेष सामान्य व्यक्ति समझा जाता है। इसके विपरीत शारीरिक तथा मानसिक अक्षमताओं के कारण कोई भी व्यक्ति विशिष्ट एवं गहन व्यवहारगत विचलन के फलस्वरूप कार्य सम्पादन करने में असमर्थ रहता है तथा सामान्यत: सामाजिक सामजस्य भी नहीं कर पाता है तो ऐसी स्थिति में ऐसे व्यक्ति को हम अशक्त, अपंग अथवा विकलांग मान लेते हैं।

सामान्यत: शरीर के किसी भी अंग की कमी होने अथवा कमजोर होने की स्थिति में तथा मानसिक शक्ति के कमजोर या क्षीण होने की स्थिति में उत्पन्न असामान्य, व्यवहारगत प्रतिफल अशक्तता अथवा अयोग्यता कहलाता है।

अशक्तता एवं सांस्कृतिक-नैतिक उतरदायित्व

अशक्तता, अयोग्यता अथवा विकलांगता - एक प्रकार की असुविधा से ग्रसत व्यक्ति कोई बोझ भी नहीं है और इस असुविधा का सापेक्ष स्वरूप है। इनका सहयोग एवं सहायता समाज के व्यक्ति विशेष के मूल्यों तथा संस्कृति पर निर्भर करता है। ऐसी संस्कृति में आस्था और विश्वास को प्रेम, स्नेह, आदर भ्रातृत्व, सद्भाव, सहयोग और मित्रवत् व्यवहार जैसे मूल्य घोषित करते हैं। जहाँ तक भारतीय संस्कृति का प्रश्न है, हमारी संस्कृति, सहयोग दया व सहानुभूति की संस्कृति है। हमारी संस्कृति उतरदायित्व निभाने की संस्कृति है न कि पलायनवाद की संस्कृति। हमारी संस्कृति कर्तव्यनिष्ठा निभाने की संस्कृति है न कि कर्त्तव्यविमुखता की संस्कृति। अत: ऐसे सभी बालकों को समान शिक्षा के अवसर प्रदान करवाने का हमारा नैतिक उतरदायित्व बनता है। विशेष परिस्थिति में सभी सामान्य व्यक्तियों का यह कर्त्तव्य बन जाता है कि ऐसे अशक्त एवं विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को समयानुसार उचित मार्गदर्शन व शिक्षा दी जाए ताकि वे समाज में अच्छी शिक्षा पाकर स्वावलम्बी व अच्छे नागरिक बन सकें। इसके दृष्टिगत केन्द्रीय सरकार द्वारा अशक्त बालकों के लिए समेकित शिक्षा हेतु एक प्रायोजित योजना चलाई गई है जिसके अंतर्गत ऐसे बालकों को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने संबंधी सुविधाएँ प्रदान की गई हैं।

अशक्तता एवं संवैधानिक वचनबद्धता

भारतीय संविधान में अनेक ऐसी धाराएँ,उपधाराएँ अथवा अनुच्छेद है जिनका संबंध विशिष्ट वर्ग के बालकों के शैक्षिक विकास से हैं। सविंधान की ये धाराओं 29 (i) व (ii), 30 (i) व (ii) धारा 41, 46 व 253 के अनुच्छेदों और धारा 45 के नीति निर्देशक तत्वों में राज्यों को अशक्त बालकों के लिए विशेष शिक्षा व देखभाल करने की बात कही गयी है। अत: संवैधानिक बवचनबद्धता को निभाने के लिए हम सभी का समर्पित होना अनिवार्य है चाहे हम माता-पिता हैं, अभिभावक हैं अथवा शिक्षक हैं। अशक्तों व कमजोर वर्ग के बालकों के लिए समान शिक्षा के अवसर प्रदान कराने में हमारी भी उतनी ही जिम्मेदारी है जितनी कि सरकार की। अपनी संवैधानिक वचनबद्धता को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 और कार्य योजना 1992 के अपुरूप विकलांग बच्चों की शिक्षा के प्रति राष्ट्र कटिबद्ध है। 1986-87 से निम्न तथा मध्यम स्तर के विकलांग बालकों को सामान्य विद्यालयों में, सामान्य बच्चों के साथ समेकित रूप में शिक्षा प्रदान करने का प्रयास किया जा रहा है। सरकार द्वारा समेकित स्वरूप में

विकलांग बच्चों को सामान्य बच्चों की तरह उन्नति करने के समान अवसर दिए जा रहे हैं। इन अवसरों के माध्यम से उन्हें भरोसे व हिम्मत के साथ जीने की उम्मीद दिलाई जा रही है। सरकार द्वारा ऐसे बालकों को जो किसी भी प्रकार की शारीरिक, मानसिक, क्षीणता, संवेगात्मक अयोग्यता व विकलांगता से ग्रस्त हैं और जिनकी विकलांगता का स्तर 40 प्रतिशत या इससे अधिक होता है, उनको समेकित स्वरूप में सामान्य विद्यालयों में शिक्षा दी जा रही है। इन बालकों को वांछित उपकरण के लिए वित्तीय सहायता, पुस्तकें व अन्य पाठ्य सामग्री, वर्दी, यातायात भत्ता भी दिया जाता है ताकि वे अपनी विद्यालयी शिक्षा को पूरा कर सकें। परंतु ये प्रयास अपने आप में अधूरे हैं। इस प्रकार के प्रयास अभी भी सतही प्रयास हैं। इनको त्वरित गति प्रदान करने के लिए हम सभी को सामूहिक तथा व्यक्तिगत तौर पर यथासम्भव योगदान देना होगा।

अशक्तता एवं शिक्षा का सार्वभौमिकरण

प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के उद्देश्य की पूर्ति हेतु हरियाणा की नई शिक्षा नीति–2000 के अनुसार विद्यालयी शिक्षा के स्तर को गरिमामय बनाने का संकल्प लिया गया है। इस संकल्प में शिक्षा की गुणवत्ता, कम्प्यूटर शिक्षा तथा विज्ञान एंव प्रौद्योगिकी के विस्तार एवं नेटवर्किंग के साथ जोड़ने पर बल दिया है, साथ ही 2010 तक इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु राज्य में सर्व शिक्षा अभियान शुरू किया गया है जिसके अनुसार सभी बच्चों को शिक्षा के समुचित अवसर उपलब्ध करना तथा 2010 तक प्रत्येक बच्चे को आठवीं कक्षा तक शिक्षा प्रदान करना है। **जीवन के लिए शिक्षा** पर बल देते हुए सन्तोषजनक स्तर की गुणात्मक शिक्षा प्रदान करना मुख्य ध्येय है। यह तभी संभव होगा, जब हम सभी सत्यनिष्ठा से एक जुट होकर प्रयास करेंगे। इसके लिए समुदाय की अधिकाधिक भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी। पंचायतीराज संस्थाओं, अध्यापक संगठन, अध्यापक अभिभावक संघ तथा ग्राम शिक्षा समितियों को सकारात्मक स्वामित्व की भावना से कार्य करना होगा तथा अपने–अपने उतरदायित्वों का ठीक प्रकार से निर्वाह करना होगा। हमारे ये निश्चय तभी साकार हो पाएंगे जब हम सभी अपने–अपने क्षेत्रों में दायित्वों के प्रति सजग रहते हुए अपनी भूमिका निभाएंगे।

माता–पिता तथा अभिभावक के रूप में

अशक्त बच्चे अपनी शारीरिक मानसिक, व्यवहारिक व संवेगात्मक विशेषताओं के आधार पर अन्य बालकों से भिन्न होते हैं जिन्हें पूरी तरह से विकसित होने के लिए विशेष चिकित्सकीय सहायता, स्नेह, प्यार, देखभाल व विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं

की जरूरत पड़ती है। माता-पिता एवं अभिभावकों को निम्नलिखित बातों की तरफ ध्यान देना चाहिए:

1. इन बालकों की विशेष आवश्यकताओं की यथाशीघ्र पहचान की जाए।
2. अशक्त बच्चों की सभी आवश्यकताओं की तरफ विशेष ध्यान देना आवश्यक है। इन्हें किसी भी कीमत पर आवश्यकताओं से वंचित नहीं रखना है अन्यथा उनके अंदर हीनता की भावना आ जाएगी।
3. ऐसे बालकों की सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित कर मित्रवत व्यवहार करना।
4. प्रेम, सद्भाव एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार तथा उनकी अपेक्षाओं एवं आकांक्षाओं को समझना।
5. ऐसे बालकों को बोझ नहीं समझना चाहिए बल्कि इनके सहयोग के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए।
6. अशक्त बच्चों के लिए विद्यालय जो कुछ भी कर रहा है उसमें पूर्ण रूप से सहयोग देना चाहिए।
7. जिज्ञासावश पूछे गए प्रश्नों का सन्तोषजनक उतर देना चाहिए।

माता-पिता एवं अभिभावकों को अशक्त बच्चों की समेकित शिक्षा प्रदान करने में विद्यालय, प्रशासन तथा सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं व ग्राम शिक्षा समितियों का सहयोग कर एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी चाहिए।

अध्यापक के रूप में भूमिका

अशक्त बच्चों के विषय में कुछ लोगों द्वारा यह सुझाव दिया जाता है कि इन बच्चों को अलग समूहों में रखा जाए तथा उनके मानसिक स्तर के अनुरूप विशेष रूप से तैयार किये गए पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा देने की व्यवस्था की जाए। लेकिन ऐसा करना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उचित नहीं है क्योंकि इससे बच्चों में हीनभावना का विकास हो जाएगा तथा उसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व के विकास पर भी पड़ेगा। इसके लिए अध्यापक को निम्नलिखित बातों की तरफ ध्यान देना चाहिए।

1. उनका पाठ्यक्रम सामान्य बालकों जैसा हो लेकिन अध्यापक उसे ऐसे ढंग से पढ़ाए कि बच्चे उसमें रूचि ले तथा आसानी से सीख सके। उसके लिए सहायक पाठ्य सामग्री प्रयोग की जा सकती है।

2. ऐसे बच्चों को वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में रखकर पढ़ाया जाना चाहिए।
3. अशक्त बच्चों की शिक्षा का उद्देश्य उन्हें विद्वान बनाना नहीं होता बल्कि योग्य नागरिक व कुशल कार्यकर्त्ता बनाना होता है। अत: उनके पाठ्यक्रम में कार्य, अनुभव व अन्य व्यवसायिक विषय शामिल होने चाहिए।
4. अशक्त एवं पिछड़े बच्चों के पाठ्यक्रम में कार्य अनुभव व अन्य व्यवसायिक विषय शामिल होने चाहिए। पाठ्यक्रम विषय केन्द्रित न होकर परियोजना केन्द्रित होना चाहिए।
5. इन बच्चों की तर्कशक्ति कम होती है। अत: पाठ्यक्रम को कहानीनुमा व तुलनात्मक ढंग से पढ़ाना चाहिए।
6. विद्यालय में उनकी रूचि बनाए रखने के लिए विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। उनकी सभी भौतिक आवश्यकताएं एवं सुविधाएं पूरी की जानी चाहिए। खेलकूद एवं अन्य गतिविधियों की व्यवस्था भी की जा सकती है।
7. शैक्षिक यात्राओं का भी आयोजन किया जाना चाहिए।
8. पिछड़ेपन, अशक्तता एवं अयोग्यता के कारणों का पता लगाकर उन्हे दूर किया जाना चाहिए।
9. ऐसे बच्चों के पाठ्यक्रम में संगीत व चित्रकला जैसे कलात्मक विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

उपरोक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि हमारी संवैधानिक वचनबद्धता, सांस्कृतिक उत्तरदायित्व एवं नैतिक दायित्व हमें अशक्त बच्चों के प्रति अपने कर्तव्यपालन निभाने की ओर सकेंत करता है। प्रत्येक बच्चे को शिक्षा के समुचित अवसर प्रदान करना हम सब का नैतिक कर्तव्य है। समाज, सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं, माता-पिता व अभिभावकों से पूर्व सहयोग प्राप्त करने के लिए माहौल को रूचिकर बनाना अध्यापक का प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य है। विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर उन्हें शिक्षा की मुख्यधारा में लाना भी अध्यापकों की महत्वपूर्ण भूमिका के अन्तर्गत निहित है। अत: अशक्त बच्चों को सशक्त बनाने की सभी अध्यापकों की अपने-अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका है जिसे उचित रूप से निभाया जाना चाहिए।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 2, अगस्त 2007

शोध टिप्पणी/संवाद

मूल्य परक शिक्षा के संदर्भ में विद्यार्थियों के दृष्टिकोण का सर्वेक्षण

बृजेश कुमार पाण्डेय*

शिक्षा मानव समाज के विकास की सतत् प्रक्रिया एवं आधारशिला है। शिक्षा समाज द्वारा निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति हेतु एक बड़ी ही सशक्त एवं प्रभावशाली साधन है। शिक्षा बालक में संस्कार डालने की एक प्रक्रिया है। सामाजीकरण के द्वारा व्यक्ति जन्म के बाद से ही आदर्शों एवं मूल्यों को आत्मसात करता है। शिक्षा द्वारा ही उसके अन्दर कार्य एवं व्यवहार करने की ऐसी क्षमता विकसित की जा सकती है कि उसका व्यवहार मनसा, वाचा और कर्मणता, तीनों की एकता से आबद्ध होकर घटित हो। ''सा विद्या या विमुक्तये'' अर्थात शिक्षा वह है जो व्यक्ति को बंधन मुक्त करती हो, उसे धन, पद, मान, प्रतिष्ठा के लोभ से ऊपर उठाती हो। परन्तु धनोपार्जन शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बन गया है। नैतिकता एवं चरित्र निर्माण जैसे मुद्दों का तो मानो शिक्षा से कोई लेना-देना नहीं है। आज हम सोचने को विवश हैं कि दोष कहीं हमारी शिक्षा प्रणाली में तो नहीं है। आज मानवता एक नए विश्व समाज का रूप ले रही है और जानकारियां तो बढ़ रही हैं, लेकिन समझदारी कम हो रही है। संघर्ष और प्रतियोगिता अपने चरम पर है। विकसित और विकासशील देशों के बीच की खाई और बढ़ रही है। तो यहाँ प्रश्न खड़ा होता है कि ऐसी परिस्थितियों में शिक्षा का स्वरूप कैसा हो?

प्रचीन भारतीय जीवन की पृष्ठभूमि पर भारतीय ऋषियों एवं मनीषियों ने अपने चिंतन में जिन प्राचीन मूल्यों की आधार शिला रखी थी, वह सत्यम, शिवम, सुन्दरम थी और वह मानव के आनन्द से ओत-प्रोत एवं कल्याणकारी भावना से परिपूर्ण थी।

* वरिष्ठ प्रवक्ता, संत बिनोवा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, देवरिया (उ.प्र.)

वर्तमान शैक्षिक परिवेश में जहाँ चारों ओर मूल्यपरक शिक्षा की मांग की जा रही है, आज समाज जहां आंतरिक कलह, साम्प्रदायिकता, भेदभाव, जातिवाद, आर्थिक विषमता आदि संकीर्णता की अग्नि में जल रहा हो तो ऐसी विषम परिस्थितियों में मूल्य परक शिक्षा की उपयोगिता और बढ़ जाती है। जहां पहले वसुधैव कुटुम्बकम की शिक्षा दी जाती थी, वहीं अब हम केवल अपने लिए जी रहे हैं। आज शिक्षा की योजना और प्रशासन की प्रक्रिया से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति के विचार में शिक्षा को मूल्यपरक बनाने की अति आवश्यकता है। वर्तमान शिक्षा का उद्देश्य क्या हो? शिक्षण विधि कैसी हो? शिक्षक और शिक्षार्थी कैसे हों? परिवार एवं समाज का योगदान क्या हो? विद्यालय की भूमिका कैसी हो? इन सभी प्रश्नों पर विचार करने के पहले हम मूल्य क्या है, इसे जानें।

मूल्य की परिभाषा दार्शनिक, समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भिन्न-भिन्न की गयी है। वास्तव में मूल्य वे मानदण्ड हैं जिनके द्वारा लक्ष्यों का चुनाव किया जाता है। अलपोर्ट (1954) का मत है कि मूल्य एक मानव विश्वास है जिसके आधार पर मनुष्य वरीयता प्रदान करते हुये कार्य करता है। प्रो. अर्बम ने अपनी पुस्तक फण्डामेंटल ऑफ एथिक्स में लिखा है कि मूल्य वह है जो मानव इच्छा की तृप्ति करे, जो व्यक्ति तथा उसकी जाति के संरक्षण में सहायक हो। मूल्य शब्द को सामान्यत: इस प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है कि मूल्य वस्तु या स्थिति का वह गुण है जो समालोचना व वरीयता प्रकट करता है। यह एक आदर्श या इच्छा है जिसे पूरा करने के लिए व्यक्ति जीता है तथा आजीवन प्रयास करता है। मूल्य हमारे जीवन के पथ-प्रदर्शक है जो न केवल व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के विकास में सहायक होता है बल्कि इससे सम्पूर्ण समाज का कल्याण भी संभव होता है। मूल्य शिक्षा का नीति निर्देशक तत्व है- ये मानव व्यवहार को नियंत्रित और निर्देशित करते हैं। मूल्यविहीन शिक्षा निरर्थक एवं निर्जीव समझी जाती है। हम यह कह सकते हैं कि शिक्षा पूरी संरचना मूल्य पर आधारित होती है। मूल्य व्यक्ति के जीवन का आधार होते हैं। जिन मूल्यों के माध्यम से सांस्कृतिक धरोहर सुरक्षित बनी रहे, हमें उन मूल्यों के प्रति बालकों की आस्था उत्पन्न करनी चाहिए और उसके अनुसार आचरण करने को भी प्रेरित करना चाहिए तभी हमारे मूल्य जीवित रह पायेंगे। मूल्यों के अभाव में मनुष्य व्यक्तिगत रूप से चाहे जितना अधिक सुख-सुविधा के साधन जुटा ले, समृद्धि एवं वैभव अर्जित कर लें लेकिन समाज में सुख एवं शांति कायम नहीं हो सकती है।

अध्ययन की विधि

प्रतिदर्श : बदलाव और हलचल के इस दौर में सबसे अधिक दबाव युवा पीढ़ी पर है जिसे न केवल विधिवत शिक्षा प्राप्त करनी है अपितु जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण भी अपनाना सीखना है। मूल्यपरक शिक्षा के संबंध में विद्यार्थियों के क्या दृष्टिकोण, अभिवृत्ति तथा अपेक्षाएं हैं, इनको जानने के लिए देवरिया (उत्तर प्रदेश) जनपद के तीन महाविद्यालय संत बिनोवा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, देवरिया के स्नातक स्तर के 300 छात्र-छात्राओं को सहयोगी के रूप में चुना गया तथा मूल्यपरक शिक्षा से संबंधित दस महत्वपूर्ण आयामों के संदर्भ में इनके विचार जानने का प्रयत्न किया गया है। इस संबंध में सहयोगियों से जो दस प्रश्न पूछे गये वे मुक्तान्त प्रश्न थे। विद्यार्थियों को स्पष्ट निर्देश दिया गया था कि आपको पूरी स्वतंत्रता है, अपने विचारों को जितना चाहें, जैसा चाहें लिखित रूप में प्रस्तुत करें। आपके विचारों को पूर्णत: गोपनीय रखा जाएगा एवं केवल शोध कार्य हेतु ही प्रयुक्त किया जाएगा। आप बिना संकोच के सभी प्रश्नों का उत्तर दीजिए। इस प्रकार इन प्रश्नों का उपयोग एक प्रक्षेपी तकनीक के रूप में किया गया।

सामग्री : प्रस्तुत अध्ययन की सामग्री मूल्य परक शिक्षा पर आधारित है। मूल्य परक शिक्षा पर आधारित दस आयामों पर जो प्रश्न पूछे गये, वे इस प्रकार हैं:

(1) क्या वर्तमान शिक्षा मूल्य परक है?
(2) शिक्षा को मूल्य परक बनाने में परिवार की क्या भूमिका है?
(3) शिक्षा को मूल्य परक बनाने में समाज की क्या भूमिका है?
(4) शिक्षा को मूल्य परक बनाने में विद्यालय की क्या भूमिका है?
(5) शिक्षा को मूल्य परक बनाने में शिक्षकों की क्या भूमिका है?
(6) शिक्षा को मूल्य परक बनाने में शिक्षार्थी की क्या भूमिका है?
(7) शिक्षा को मूल्य परक बनाने में पाठ्यक्रम की क्या भूमिका है?
(8) शिक्षा को मूल्य परक बनाने में पाठ्य सहगामी क्रियाओं की क्या भूमिका है?
(9) शिक्षा को मूल्य परक बनाने में राष्ट्र की क्या भूमिका है?
(10) क्या उपरोक्त सभी संस्थाएं शिक्षा को मूल्य परक बनाने में सक्षम हैं, यदि नहीं तो कौन-कौन सी बाधाएं हैं?

प्रक्रिया: स्नातक तृतीय वर्ष के तीन सौ छात्र-छात्राओं को, जो कि तीनों महाविद्यालयों के थे, मूल्यपरक शिक्षा से संबंधित दस प्रश्न दिए गए और उनसे अपने स्वतंत्र विचार लिखने को कहा गया कि अपने विचारों को लिखिए। सहयोगियों को अपने विचार व्यक्त करने की पूरी स्वतंत्रता थी। उसके बाद सहायोगियों को दिये गये प्रश्नों की उत्तरावली को एकत्रित किया गया तथा उसका विषयवस्तु विश्लेषण किया गया। विषयवस्तु विश्लेषण के उपरान्त जिन विद्यार्थियों के विचार सकारात्मक थे, उन्हें सहमत माना गया तथा जिनके विचार नकारात्मक थे, उन्हें असहमत माना गया और जिनके विचार सकारात्मक और नकारात्मक दोनों थे, उन्हें अस्पष्ट माना गया। विषय-वस्तु विश्लेषण के आधार पर प्रतिशत ज्ञात किया गया।

परिणाम

सहयोगियों द्वारा लिखित रूप से दिये गये उनके विचारों का विषय वस्तु विश्लेषण विधि द्वारा विश्लेषण किया गया। विश्लेषण द्वारा जो परिणाम प्राप्त हुए, उनका उल्लेख इस प्रकार हैं:

तालिका-1

मूल्यपरक शिक्षा के विभिन्न आयामों से प्राप्त अभिवृत्ति का प्रतिशत

प्रश्नों के क्रम	सहमत	असहमत	अस्पष्ट
1.	54.00	16.50	29.50
2.	74.00	3.00	23.00
3.	78.00	2.00	20.00
4.	72.00	6.00	22.00
5.	97.00	2.00	00.00
6.	67.00	10.72	21.43
7.	65.00	8.00	27.00
8.	64.00	3.58	32.14
9.	74.00	4.57	21.43
10.	57.14	7.14	35.72

विवेचना

विषयवस्तु के विश्लेषण करने पर प्रस्तुत आयामों से संबंधित जो विचार सामने आये, उनका उल्लेख इस प्रकार है:

क्या वर्तमान शिक्षा मूल्यपरक है? इस संदर्भ में सहयोगियों के विचार थे कि यदि आप वैदिक काल, उत्तर वैदिक काल तथा बौद्ध कालीन शिक्षा की विषयवस्तु का अध्ययन करें तो आप पायेंगे कि चरित्र का विकास करना शिक्षा व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग था। विद्यार्थी गुरुकुलों, आश्रमों तथा विहारों में चारित्रिक निर्माण तथा मूल्यों की शिक्षा के कठोर नियमों का पालन करते थे। मूल्यपरक शिक्षा के माध्यम से हम बालकों में सहयोग, सहानुभूति, परोपकार, मातृत्व की भावना, कर्त्तव्यनिष्ठा, स्वाभिमान, श्रम की महत्ता, न्याय, आत्म विश्वास, अनुशासन, आत्म नियंत्रण, सेवा-भाव तथा ईमानदारी की भावना आदि विकसित कर सकते थे। सादा-जीवन उच्च विचार वाले जीवन यापन की अपेक्षा होती थी। इस प्रकार शिक्षा मूलत: मूल्यपरक थी।

देश में तथाकथित आधुनिक शिक्षा के उदय से ही हमारे समाज में मूल्यों का शनै:-शनै: ह्रास हुआ है। इसका कारण यह है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था में चरित्र के विकास तथा मूल्यों की शिक्षा की उपेक्षा हुई। भौतिकवाद, संघर्ष और प्रतियोगिता अपने चरम पर है तथा पश्चिमी संस्कृति प्रभाव के कारण आवश्यक मूल्यों तथा सांस्कृतिक अस्मिता का ह्रास हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप मूल्यों में गिरावट पैदा हुई है। आज की शिक्षा लक्ष्यविहीन, नीतिविहीन, प्रेरणाविहीन, शिक्षा में भ्रष्टाचार, अनुपयोगी पाठ्यक्रम आदि शिक्षा से ग्रस्त है जो शिक्षा को मूल्यपरक बनाने में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं।

शिक्षा को मूल्यपरक बनाने में परिवार की क्या भूमिका है? परिवार वास्तव में मानव सृजन की आधारशिला है और बच्चे की प्रथम पाठशाला है। गर्भ से लेकर मृत्यु पर्यन्त पड़ने वाले समस्त सुसंस्कारों की पृष्ठभूमि सर्व प्रथम परिवार में माता-पिता द्वारा शुरु होती है। परिवार में ही बच्चा, भाषा, आचरण की विधियां सीखता है; धर्म और संस्कृति ग्रहण करता है। वास्तव में परिवार में ही मूल्यों की नींव रखी जाती है। प्रारंभ में बालक परिवार के लोगों का अनुकरण करता है और बाद में उस पर परिवार

के लोगों की अनुक्रिया देखकर सही गलत का चुनाव करता है। यहीं, उसमें मूल्यों को जानने का श्रीगणेश होता है। माता-पिता को चाहिए कि बालक के अच्छे कार्य के लिये उसे सदैव पुरस्कृत करें तथा बुरे कार्यों के लिए निन्दा। घर में बड़े-बूढ़ों द्वारा कहे जाने वाली कहानियां भी बालक में त्याग, सहयोग, दान आदि की भावना का विकास करती है। परिवार, बालकों में मूल्य शिक्षा के लिए वास्तव में बहुत महत्वपूर्ण कार्य कर सकता है क्योंकि मानव का सृजन परिवार में ही होता है।

परन्तु बड़े दुर्भाग्य की बात है कि आज हमारे भारतीय परिवारों की दशा बड़ी सोचनीय हो गयी है। प्राचीन काल में जहाँ संयुक्त परिवारों की व्यवस्था थी वहीं अब पति-पत्नी और एक बच्चे से बने परिवारों में समरसता, सृजनशीलता, त्याग, दया, क्षमा और ममता के अभाव देखने को मिलता है। भौतिक सुख के पीछे अंधी दौड़ में लगे माता-पिता अपने बालक को नौकर के साथ छोड़ अपनी स्वार्थ लिप्सा में लिप्त नजर आते हैं। तलाक के लाखों मुकदमें भारतीय समाज में देखने को मिलते हैं। 70 प्रतिशत अपराधी बच्चे परिवार की ही देन हैं।

व्यक्ति और समाज एक सिक्के के दो पहलू हैं। एक दूसरे का बड़ा ही घनिष्टतम् संबंध है। व्यक्ति से समाज और समाज से व्यक्ति का निर्माण होता है। समाज एक प्रतिदर्श के रूप में मूल्योन्मुख सामाजिक परिवेश पर बल दे सकता है। शिक्षा, समाज की आवश्यकता है। सामाजिक परिवेश पर शिक्षक के मूल्यों का मूल्यांकन आधारित है तथा शिक्षा स्वस्थ समाज की आधारशिला है। समाजपयोगी तथा समाज विरोधी, दोनों प्रकार के व्यवहार समाज में दिखते हैं। आज आदमी जिस समाज में रह रहा है वह समाज कम, बाजार अधिक है। बाजार ने आदमी को न केवल वस्तुगामी बनाया है बल्कि उसे इसी परम्परा में एक दूसरे का गला काटकर आगे बढ़ना भी सिखाया है। आदमी की पहचान बाजार अपने ढंग से दे रहा है, यहां तक कि आज के आदमी की सब नैतिकताएं और मूल्य बाजार ही तय करता प्रतीत होता है। अपनी इच्छा को पूरा करने के लिए आज का मानव साम, दाम, दण्ड व भेद का नंग-धडंग रूप प्रयोग कर रहा है। भूमण्डलीकरण के इस युग में अवसरों के साथ आकांक्षाएं भी बढ़ी हैं, यह बात व्यक्ति और समाज, दोनों के लिए सच है। वस्तुतः मूल्य आधारित जीवन शैली अपना कर ही हम कठिन से कठिन परिस्थितियों का सामना करते हुए राष्ट्र की उन्नति का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

शिक्षा को मूल्यपरक बनाने में विद्यालय की भूमिका को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि विद्यालय ही वास्तव में वह माध्यम है जो बालक की अन्तर्निहित शक्तियों को प्रस्फुटित करने के पूर्ण प्रयास करता है तथा जहां उसके मन-मस्तिष्क के ज्ञानरूपी कमल को पूर्ण प्रस्फुटित होने के अवसर प्राप्त होता है। विद्यालय के अन्दर पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन करने बालकों में मूल्यों को विकसित किया जा सकता है लेकिन वर्तमान में कहां तक विद्यालय बालकों में शिक्षा को मूल्य परक बनाने में सक्षम हैं, इससे सभी परिचित हैं।

शिक्षा को मूल्यपरक बनाने में शिक्षक की भूमिका को स्वीकार करते हुये कहा गया है कि शिक्षक का कार्य केवल शिक्षण नहीं अपितु दिग्दर्शन भी है। आध्यात्मिक चेतना और पूर्ण सम्पर्ण से प्रेरित आत्म बल ही दी जाने वाली शिक्षा को प्रभावी बना सकता है। आज के स्कूली बच्चे कल काम करने वाले बनेंगे और राष्ट्र की जिम्मेदारियां उनके कंधों पर होंगी। यह शिक्षकों का ही दायित्व है कि वे उनमें राष्ट्र प्रेम और कर्त्तव्य भावना का सही विकास करें। शिक्षार्थी शिक्षक को आदर्श के रूप में मानते हैं। शिक्षक चरित्रवान, उच्च आदर्शवादी, आत्म विश्वास जागृत करने वाला, पथ प्रदर्शक, प्रतिभा को प्रोत्साहित करने वाला, प्ररेणास्रोत तथा कुशल प्रशिक्षक आदि गुणों का संचार करता है। लेकिन आज का शिक्षक मूल्यविहीन, आदर्शहीन, चरित्रहीन होता जा रहा है। आज के अध्यापक के सामने विद्यार्थी के चारित्रिक गुण नहीं अपितु उसका परीक्षाफल होता है।

शिक्षा के तीन आधारभूत स्तंभों में एक स्तंभ शिक्षार्थी है। शिक्षार्थी संस्कृति का रक्षक है। शिक्षार्थी आदर्शवादी, समाजोपयोगी तथा चरित्रवान होता है। लेकिन वर्तमान समय में मूल्यों में ह्रास होने का एक कारण शिक्षार्थी की मूल्य शिक्षा का अभाव है। इसका मुख्य कारण विद्यार्थियों में संवेदनशून्यता, समाजविरोधी प्रवृत्तियों की ओर उन्मुक्तता, दिग्भ्रमित, लक्ष्यविहीन तथा जागरूकता की कमी आदि है।

शिक्षा को मूल्यपरक बनाने में पाठ्यक्रम की क्या भूमिका हो? पाठ्यक्रम को कैसे रखा जाय, इस संबंध में कोठारी आयोग ने कहा है कि पाठ्यक्रम में गंभीर त्रुटि यह है कि इसमें सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा की व्यवस्था नहीं की गयी है। पाठ्यक्रम में मूल्यपरक शिक्षा की व्यवस्था करें। मूल्य शिक्षा का बीजारोपण प्राथमिक स्तर से ही होना चाहिए, मात्र उपदेश देकर नहीं बल्कि परिवार,

विद्यालय, समाज में एक प्रेरणादायी वातावरण उत्पन्न करना चाहिए। इस स्तर पर ईश्वर में आस्था, निर्भिकता, स्वच्छता, बड़ों का आदर, न्याय, सत्यता आदि गुणों का विकास कर सकते हैं। उच्च स्तर के छात्रों में संश्लेषण, विश्लेषण, मूल्यांकन, आत्मनियंत्रण जैसे गुणों का विकास हो चुका होता है। इस स्तर पर स्वावलंबन, श्रम के प्रति श्रद्धा, राष्ट्र प्रेम, सर्व धर्म संभाव जैसे मूल्यों का विकास निश्चित रूप से होना चाहिए।

शिक्षा को मूल्यपरक बनाने में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। इसके द्वारा व्यक्ति में कर्त्तव्य परायणता, अनुशासन, समूह भावना, देश प्रेम, श्रम की गरिमा, नेतृत्व सहयोग, स्वास्थ्य संबंधी विकास, समाज से जोड़ने का कार्य आदि मूल्य पाठ्य सहगामी क्रियाओं के द्वारा हम प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु वर्तमान में पाठ्य सहगामी क्रियाएं केवल विद्यालय में औपचारिक मात्र बनकर रह गयी हैं, इससे हम सभी परिचित हैं।

शिक्षा को मूल्यपरक बनाने में राष्ट्र की अहम भूमिका होती है। राष्ट्र समय-समय पर शिक्षा को मूल्यपरक बनाने के लिए अपने नीतियों में परिवर्तन करता रहा है। डॉ. राधा कृष्णनन आयोग (1948) ने विश्व विद्यालय स्तर पर धार्मिक शिक्षा की बात कही। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने प्रतिपादित किया है कि चरित्र के विकास में नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। शिक्षा आयोग (1964-66) की संस्तुति है कि सामाजिक नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा देने के लिये सोच-समझकर संगठित प्रयास करने चाहिए तथा जब और जहां संभव हो, इसके लिए महान धर्मों के नैतिक सिद्धान्तों की सहायता लेनी चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में शिक्षा को सामाजिक-नैतिक मूल्यों के विकास के लिए सशक्त माध्यम माना गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में यह भी कहा गया है कि विद्यार्थियों को इतिहास तथा राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य की सीख देनी चाहिए और उन्हें नागरिकों के संवैधानित कर्त्तव्यों एवं अधिकारों को समझने के अवसर देने चाहिए। मानव संसाधन विकास की संसदीय स्थायी समिति (1999) की टिप्पणी है कि ''यह निराशाजनक है कि पिछले चार दशकों में किये गये प्रयासों के वांछित परिणाम नहीं निकले हैं। शिक्षा को केवल मूल्यपरक बनाने की सुनियोजित योजनाएं तथा कार्यनीतियां केवल दस्तावेजों में ही रह गयी हैं।'' आज शिक्षा क्रम में ऐसे परिवर्तन की

आवश्यकता है जिससे सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा एक सशक्त साधन बन सके।

उपरोक्त सभी संस्थाएं शिक्षा को मूल्यपरक बनाने में सशक्त भूमिका अदा कर सकती हैं तथा इसके बिना शिक्षा को मूल्य परक बनाने की परिकल्पना ही नहीं की जा सकती। यदि हम उपरोक्त सभी बाधाओं को दूर कर दें तो निश्चित ही हमारी शिक्षा प्रणाली मूल्यपरक हो जायेगी और हम अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सकेंगे।

हम नियति के चौराहे पर खड़े हैं, हमें उस मार्ग को अपनाना चाहिए जो प्रतियोगिता की ओर नहीं, सहयोग की ओर ले जाता हो, अनबन की ओर नहीं, सामंजस्य की ओर ले जाता हो, भोगवाद की ओर नहीं, संयम की ओर ले जाता हो। यह कार्य केवल मूल्यपरक शिक्षा ही कर सकती है। अब जबकि प्रतिक्षण नये-नये आविष्कार हो रहे हैं, कंप्यूटर और इंटरनेट की सीमा का अभूतपूर्व विस्तार कर दिया गया है। ऐसे में हम वैदिक कालीन पद्धति में वापस जाने की बात सोच ही नहीं सकते। हमें यह विचार करना है कि किस तरह से गुरु-शिष्य संबंध में निकटता आये और शिक्षा जगत् में नैतिकता पुनः पांव जमा सके।

संदर्भ

आलपोर्ट, जी.डब्ल्यू. (1954): *दी हिस्टारिकल बैकग्राउण्ड ऑफ मार्डन सोशल साइकॉलाजी,* येल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू हेकेन

रोश्चर, निकोलस (1968): *इंट्रोडक्शन टु वैल्यू थ्योरी,* नई दिल्ली, प्रेन्टिस हाल

कुलश्रेष्ठ, एस.पी. (1979): *इमर्जिंग वैल्यू पैटर्न्स ऑफ टीचर एण्ड न्यू ट्रेंड्स ऑफ एजुकेशन इन इंडिया,* नई दिल्ली : लाइट एंड लाइफ पब्लिशर्स

भारत सरकार (1986): *राष्ट्रीय शिक्षा नीति,* 1986, भारत सरकार, नई दिल्ली

रूहेला, एस.पी. (1990): द *एमर्जिंग कॉनसेप्ट ऑफ एजुकेशन इन ह्यूमन वैल्यूज,* नई दिल्ली रीजेन्सी पब्लिकेशन्स

शर्मा, जे.एन. एंड गुप्ता, के.एम. (1996): *वैल्यू एजूकेशन,* नई दिल्ली, सिटीजनशिप डेवलपमेंट सोसायटी

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 2, अगस्त 2007

शोध टिप्पणी/संवाद

दोपहर का भोजन कार्यक्रम एवं प्राथमिक शिक्षा

कल्पना शर्मा*, रीतेश कुमार और निशिथ चन्द्र श्रीवास्तव*****

सारांश

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण होता है। जब तक व्यक्ति शारीरिक रूप से सुदृढ़ न हो तब तक वह मानसिक रूप से सुदृढ़ नहीं होगा। शिक्षा के इसी अभिव्यक्ति को पूर्ण करने के लिये दोपहर का भोजन कार्यक्रम है जो स्वास्थ्य के साथ-साथ गुणात्मक शिक्षा देने के लिए प्रतिबद्ध है। मिड डे मील वास्तव में मध्यान्ह पोषाहार योजना का प्रचलित नाम है। इस योजना से वर्तमान में पूरे भारत में 12 करोड़ से ज्यादा विद्यार्थी लाभान्वित हो रहे हैं उत्तर प्रदेश एवं बिहार के लगभग 3.5 करोड़ से ज्यादा विद्यार्थी लाभान्वित हो रहे हैं। यह योजना न केवल प्राथमिक विद्यालय के विद्यार्थियों को विद्यालय की ओर आर्कषित कर रही है बल्कि साथ ही साथ उनका सम्प्राप्ति स्तर भी बढ़ा रही है।

संसार का कोई भी देश तब तक विकास नहीं कर सकता है जब तक कि उस देश की शिक्षा पद्धति में गुणात्मक सुधार न हो। इसलिए भारत को विकास की राह पर चलने के लिये अपनी शिक्षा पद्धति में सुधार करना पड़ा है। इस बात के महत्व को इस तरह समझाा जा सकता है कि शिक्षा का विषय भारतीय संविधान में पहले राज्य सूची में हुआ करता था जो बाद में समवर्ती सूची में रखा गया और भारतीय संविधान के 86वें संशोधन के फलस्वरूप शिक्षा को मूल अधिकारों में शामिल किया गया है।

जॉन डी.वी. महोदय ने कहा है कि ''शिक्षा व्यक्ति की उन सभी आंतरिक शक्तियों का विकास है जो उसे वातावरण के नियंत्रक में उसे समर्थ बनायेगी तथा उसकी सभी संभावनाओं की प्राप्ति करायेगी।''

* वरिष्ठ प्रवक्ता, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी
** शोध छात्र, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी
*** प्रवक्ता, वंशीधर महाविद्यालय बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी

जब तक प्राथमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार न हो तब तक शिक्षा के किसी भी स्तर पर सुधार नहीं हो सकता है तथा शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। प्राथमिक शिक्षा में सुधार हेतु भारत सरकार ने मावन संसाधन एवं विकास मंत्रालय के सहयोग से सन् 1995 में ''प्राथमिक शिक्षा हेतु पोषाहार कार्यक्रम'' प्रारंभ की। इस योजना के अंतर्गत 3 किग्रा. प्रति माह/प्रति विद्यार्थी की दर से आनाज/चावल वितरित किया गया और कुछ राज्यों को कच्चे आनाज वितरण के स्थान पर पका-पकाया भोजन भी दिया गया।

विभिन्न प्रकार के सर्वेक्षणों एवं अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि पके-पकाये पोषाहार वितरण से विद्यार्थियों की नामांकन संख्या एवं उपस्थिति में परिवर्तन हुआ। अध्ययनों के आधार पर माननीय उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 20.04.2004 को यह आदेश दिया कि 1 सितंबर, 2004 से सभी प्रदेशों में अनिवार्य रूप से पका-पकाया भोजन दिया जाये।

इसी के अनुपालन में बर्तनों इत्यादि की व्यवस्था करने के लिये अनुदान भी दिया गया। उत्तर प्रदेश में इसे सम्यक विचारोपरान्त 2 अक्तूबर 2004 से लागू किया गया।

मिड डे मील का अर्थ एवं उद्देश्य

मिड डे मील का अर्थ उस पके-पकाये भोजन से है जो प्राथमिक विद्यालय के विद्यार्थियों को मध्यान्ह में दिया जाता है।

इस भोजन का उद्देश्य विद्यार्थियों को न केवल शिक्षा की तरफ आकर्षित करना है बल्कि बच्चों को चार प्रमुख पोषक तत्वों को प्रदान करना है जो निम्न लिखित हैं:

(क) प्रोटीन
(ख) आयरन
(ग) विटामिन
(घ) आयोडीन

मिड डे मील योजना के मानदंड

(क) प्रदेश के दो परिषदीय/सरकार द्वारा सहायता प्राप्त समस्त विद्यालयों में कक्षा 1 से 5 तक अध्ययनरत छात्रों को उपस्थिति के आधार पर एक वर्ष में कम से कम 200 दिन का भोजन उपलब्ध कराना।

(ख) मिड डे मील की व्यवस्था हेतु 1 रु. प्रति विद्यार्थी की दर से व्यवस्थापकों को धनराशि प्रदान करना जो अब बढ़कर 1.50 पैसा कर दिया गया है।

(ग) भोजन को पकाने हेतु ग्राम की/वार्ड की अनुसूचित जाति की महिला/अनुसूचित जनजाति की महिला/विधवा महिला की व्यवस्था करना।

(घ) मिड डे मील बनवाने हेतु बर्तन खरीदने तथा किचेन शेड बनवाने के लिए पैसा एस.जी.आर.वाई. से दिया जायेगा।

(ङ) बनने वाले भोजन की पौष्टिकता बनाने के लिये मौसमी सब्जियां जैसे- गाजर, गोभी, मटर, मूली इत्यादि को शामिल किया जायेगा।

मिड डे मील की व्यवस्था (संचालन का दायित्व ग्राम स्तर पर)

(क) ग्राम प्रधान - अध्यक्ष

(ख) विद्यालय के सभी अध्यापक - सदस्य

(ग) दो अभिभावक जिनमें एक महिला हो - सदस्य

(घ) विद्यालय का प्रधानाध्यापक - सदस्य सचिव

नगर क्षेत्र में ग्राम प्रधान के स्थान पर वार्ड सभासद अध्यक्ष होगा। शेष सदस्य उक्तवत होंगे।

संचालन की सुनिश्चितता

1. ब्लाक स्तर: दोपहर के भोजन के संसाधन को ब्लाक स्तर पर सुनिश्चित करने के लिए विकासखंड स्तर पर एक समिति गठित की गयी हो जो प्रतिमाह बैठकर आने वाली समस्याओं को दूर करने का प्रयास करेगी यह समिति निम्नवत होगी।

(क) खण्ड विकास अधिकारी - अध्यक्ष

(ख) सहायक बेसिक शिक्षा अधिकारी - सदस्य सचिव

(ग) प्रति उपविद्यालय निरीक्षक - सदस्य

(घ) बहुउद्देशीय कर्मी पंचायत राज्य - सदस्य

(ङ) न्याय पंचायत समन्वयकर (कम से कम दो) - सदस्य की सुनिश्चितता

2. जिला स्तर पर: जिला स्तर पर मिड डे मील योजना के संचालन हेतु निम्नवत समिति होगी।

(क) जिला अधिकारी – अध्यक्ष
(ख) मुख्य विकास अधिकारी – सदस्य
(ग) जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी – सदस्य सचिव
(घ) जिला विद्यालय निरीक्षक – सदस्य
(ड·) जिला समाज कल्याण अधिकारी – सदस्य
(च) जिला पंचायत राज अधिकारी – सदस्य
(छ) संबंधित नगर आयुक्त/नगर पंचायत – सदस्य
(ज) जिला आपूर्ति अधिकारी – सदस्य

3. राज्य स्तर पर: राज्य स्तर पर मिड डे मील योजना के संचालन हेतु निम्नवत समिति गठित की गयी है–

(क) प्रमुख सचिव (शिक्षा) – अध्यक्ष
(ख) सचिव बेसिक शिक्षा – सदस्य सचिव
(ग) सचिव पंचायती राज – सदस्य
(घ) सचिव खाद रसद विभाग – सदस्य
(ड·) सचिव वित्त – सदस्य
(च) सचिव नियोजन – सदस्य
(छ) निदेशक बेसिक शिक्षा – सदस्य
(ज) निदेशक एस.सी.ई.आर.टी. – सदस्य
(ट) राज्य परियोजना निदेशक (सभी के लिए शिक्षा) – सदस्य
(ठ) निदेशक पंचायती राज – सदस्य
(छ) प्रदेश सरकार द्वारा नामित दो जिलाधिकारी – सदस्य

मिड डे मील की सूची

(चयनित क्षेत्र, जनपद–जालौन में वर्ष 2005–06)

दिन	भोजन
सोमवार	खिचड़ी
मंगलवार	दलिया (नमकीन)

बुधवार	खीर (चावल की)
गुरुवार	तहरी
शुक्रवार	पूड़ी सब्जी
शनिवार	सब्जी, दाल रोटी
रविवार (विशिष्ट दिवस)	हलुआ / खीर पूड़ी

अध्ययन की कार्यविधि

1. अध्ययन का उद्देश्य:

(क) जनपद-जालौन में मिड डे मील योजना के क्रियान्वयन का अध्ययन करना।

(ख) मिड डे मील का विद्यार्थियों को उपस्थिति पर प्रभाव का अध्ययन करना।

(ग) मिड डे मील का विद्यार्थियों के नामांकन पर प्रभाव का अध्ययन करना।

(घ) मिड डे मील योजना के बाधक कारकों का अध्ययन करना।

2. अध्ययन विधि: प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य जनपद-जालौन (उ.प्र.) मिड डे मील योजना के क्रियान्वयन का अध्ययन करना है। अत: इसमें सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

3. अध्ययन के चर: (क) नामांकन, (ख) उपस्थिति तथा (ग) मिड डे मील

4. अध्ययन का न्यादर्श: (1) अध्ययन में निम्नलिखित न्यादर्श का चयन किया गया है:

विद्यालय	शहरी	ग्रामीण	योग	न्यादर्श विधि
विद्यालय	16	18	34	स्तरीकृत न्यादर्शन
विद्यार्थियों की संख्या	100	100	200	आकस्मिक न्यादर्शन
अध्यापकों की संख्या	30	30	60	आकस्मिक न्यादर्शन
अभिभावकों की संख्या	25	25	25	आकस्मिक न्यादर्शन

न्यादर्श का वर्णन

प्रस्तुत न्यादर्श में शहरी से तात्पर्य, जिले के नगर क्षेत्रों में आने वाले क्षेत्रों अर्थात्

नगरपालिका से संबंधित क्षेत्र तथा तहसील से है। ग्रामीण से तात्पर्य खण्ड विकास में आने वाले विद्यालयों, विद्यार्थियों, अध्यापकों एवं अभिभावकों से है।

प्रयुक्त उपकरण एवं प्रदत्त संकलन

प्रस्तुत अध्ययन में मिड डे मील के क्रियान्वयन संबंधी विद्यार्थियों की राय जानने के लिए साक्षात्कार अनुसूची तथा अध्यापकों एवं अभिभावकों की राय जानने के लिए प्रश्नावली का प्रयोग किया गया। तथा जिसमें सभी की राय को तीन बिन्दुओं हाँ, नहीं तथा निश्चित में मापा गया।

प्रदत्तों का विश्लेषण

प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु का स्कवायर, प्रतिशतता तथा आवृत्ति का प्रयोग किया गया।

तालिका-1

मिड डे मील का नामांकन पर प्रभाव
(चयनित न्यादर्श के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में)

ब्लाक का नाम	विद्यार्थियों की सं. (मिड डे मील योजना पूर्व) सत्र 2004-05	विद्यार्थियों की सं. (मिड डे मील) योजना आने के बाद) सत्र 2005-06	परिणाम
डकोर	582	580	3% कमी
जालौन	321	295	9.78% कमी
कदौरा	441	465	5.442% वृद्धि
कोंच	309	287	7.11% कमी
रामपुरा	322	332	62% वृद्धि
माधौगढ़	275	226	7.8% कमी
नदीगांव	283	345	21.8% वृद्धि
महेबा	314	370	17.8% वृद्धि
कुठौंद	436	507	16.2% वृद्धि
कुल योग	3283	3407	परिणाम कुल वृद्धि 3.77%

तालिका-2

शहरी विद्यार्थियों के नामांकन पर मिड डे मील का प्रभाव चयनित न्यादर्श के अनुसार

नगर क्षेत्र	विद्यार्थियों की नामांकन संख्या (मिड डे मील योजना पूर्व) सत्र 2004-05	विद्यार्थियों की सं. नामांकन संख्या (मिड डे मील) योजना आने के बाद) सत्र 2005-06	परिणाम
जालौन	599	594	0.83% कमी
उरई	829	810	2.29% कमी
कोंच	820	917	11.8% वृद्धि
कालपी	474	504	6.32% वृद्धि
कुल योग	2722	2825	परिणाम कुल वृद्धि 3.78%

तालिका-3

मिड डे मील का उपस्थिति पर प्रभाव (चयनित न्यादर्श के अनुसार)

ब्लाक का नाम	ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिमाह औसत उपस्थिति (मिड डे मील योजना पूर्व)	विद्यार्थियों की प्रतिमाह औसत उपस्थिति (मिड डे मील) योजना आने के बाद)	परिणाम
डकोर	68%	77%	9% कमी
जालौन	72%	83%	11% कमी
कदौरा	76%	85%	9% वृद्धि
कोंच	75%	83%	8% कमी
रामपुरा	73%	75%	2% वृद्धि

क्रमशः

माधौगढ़	65%	78%	13% कमी
नदीगांव	67%	74%	7% वृद्धि
महेबा	71%	80%	9% वृद्धि
कुठौंद	70%	82%	12% वृद्धि
कुल योग	70.77%	76.66%	परिणाम कुल 8.99% वृद्धि

तालिका-4

शहरी विद्यार्थियों की उपस्थिति पर मिड डे मील का प्रभाव
चयनित न्यादर्श के अनुसार

नगर क्षेत्र	**विद्यार्थियों की नामांकन संख्या (मिड डे मील योजना पूर्व) सत्र 2004-05**	**विद्यार्थियों की सं. नामांकन संख्या (मिड डे मील) योजना आने के बाद) सत्र 2005-06**	**परिणाम**
जालौन	74%	81%	7% कमी
उरई	72%	85%	13% कमी
कोंच	70%	81%	11% वृद्धि
कालपी	66%	78%	12% वृद्धि
कुल योग	70.5%	81.25%	परिणाम कुल वृद्धि 10.75%

मिड डे मील योजना के बाधक कारक

(क) मिड डे मील बनवाने के लिये जिले के अधिकांश विद्यालयों में किचिन शेड का न होना।

(ख) विद्यालयों में अध्यापकों की कमी।

(ग) क्षेत्रीय व्यक्तियों/अभिभावकों का असहयोग।

(घ) धन की कमी।

मिड डे मील योजना के बाधक कारक

1. मिड डे मील योजना के तहत मिलने वाले भोजन के लिये जनपद में अधिकांश स्थानों पर भोजन खुले स्थानों पर बनता है जिससे बनने वाले भोजन में स्वच्छता का स्तर घट जाता है।

2. जनपद में अधिकांश स्थानों पर भोजन लकड़ी के चूल्हों/भट्टी से बनता है जिसके कारण उठने वाले धुंये से विद्यार्थियों को अध्ययन कार्य में परेशानी होती है।

3. अध्ययन के दौरान यह तथ्य उभर का आया कि जनपद में अनेक विद्यालयों में अध्यापकों की कमी होने के कारण अध्यापकों का समय भोजन बनवाने व वितरण करवाने पर ही केंद्रित रहता है और अध्यापन कार्य में व्यवधान उत्पन्न होता है।

4. अध्ययन के कारण रसोइयों से किय गये साक्षात्कार के आधार पर यह तथ्य उभर कर आया कि भोजन बनाने के लिए मिलने वाला मानदेय कम है एवं मिड डे मील की व्यवस्था के लिये मिलने वाला पैसा पर्याप्त नहीं है जिससे कि गुणवत्तायुक्त भोजन दिया जा सके।

5. अध्ययन के दौरान सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के साक्षात्कार से निम्न तथ्य उभर कर आये हैं:

   (क) इस योजना के तहत मिलने वाले भोजन की गुणवत्ता ठीक स्तर की है परन्तु अच्छे स्तर की नहीं है और कहीं पर तो गुणवत्ता का स्तर काफी कम है एवं भोजन की गुणवत्ता की जांच हेतु निरीक्षक अधिकारी ग्रामीण क्षेत्रों में आते ही नहीं है या कभी-कभार आते हैं।

   (ख) इस योजना के तहत बनने वाले भोजन पर ग्राम प्रधान व प्रधानाध्यापक द्वारा उपस्थित विद्यार्थियों से ज्यादा उपस्थिति दिखायी जाती है।

(ग) मिड डे मील की योजना को प्राथमिक विद्यालयों के अतिरिक्त मान्यता प्राप्त/उच्च प्राथमिक विद्यालयों में लागू किया जाना चाहिए जिससे कि अभिभावकों का आर्थिक बोझ कुछ कम हो।

(घ) इस योजना के द्वारा बाल श्रमिक या निम्न आय वाले अभिभावकों के बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहें जो समाज हित एवं देशहित के लिय अच्छा प्रयास है।

मिड डे मील के प्रभाव

इस योजना के कुछ प्रभावी तत्व उभर कर आये हैं जो निम्नांकित हैं:

(क) सामाजिक समानता

1. लैंगिक समानता
2. जातिगत/धर्मगत समानता

(ख) बालकों का शैक्षणिक विकास

(ग) बाल पोषण

सामाजिक समानता के क्षेत्र में मिड डे मील योजना का महत्वपूर्ण योगदान है। इस योजना के तहत विभिन्न धर्मों/जातियों की अवधारणाओं को दरकिनार करते हुए तथा संवैधानिक प्रतिबद्धता को प्रदर्शित करते हुए सभी विद्यार्थियों को समान रूप से भोजन दिया जाता है और उन्हें मिल-जुलकर रहने की प्रेरणा दी जाती है। जिससे जाति-धर्म आदि के कारण देश की विघटनकारी शक्तियों को तोड़ा जा सकेगा और सुदृढ़ भविष्य की नीव रखी जा सकेगी।

इस योजना के द्वारा लैंगिक विषमताओं को दूर करने के प्रयास को बहुत अधिक बल मिला है। इस योजना के द्वारा ग्राम की / वार्ड की विधवा / अनुसूचित जाति कि महिला/अनुसूचित जनजाति की महिला की सक्रिय भागीदारी मिलती है जिससे महिलाओं को समान रूप से सम्मान व अधिकार प्राप्त हो रहे हैं।

सामान्यत: भारतीय परिवेश में सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थी अधिकांशत: गरीब तबके से संबंध रखने वाले हैं। अत: इस योजना के द्वारा उन बच्चों को विकास करने का मौका प्रदान किया जा रहा है जो आर्थिक रूप से पिछड़ हैं। और

इस योजना से आर्थिक विषमता की खाई को भी भरा जा सकता है जो कि विकसित समाज का संकेत है।

मिड डे मील योजना के चलते बालकों के शैक्षणिक विकास पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। इस योजना के चलते बच्चों की उपस्थिति, नामांकन एवं ठहराव पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इस योजना के कारण विद्यार्थी अध्ययन कार्य अधिक उत्साह से करते हैं जिससे प्राथमिक शिक्षा में सुधार हो रहा है।

मिड डे मील योजना प्राथमिक स्तर के बच्चों की भूख मिटाने में ही सक्षम हुई है बल्कि उनके शरीरिक स्वास्थ्य पर सार्थक प्रभाव डालने में सक्षम है। इस योजना के तहत मिलने वाले भोजन में निर्धारित कैलोरी ऊर्जा एवं प्रोटीन एवं पोषक तत्वों के मानकों को पूरा करने का प्रयास किया जा रहा है जिससे 'कुपोषण उन्मूलन कार्यक्रम' जैसे कार्यक्रमों को बल मिलता है और स्वस्थ की उम्मीद की जाती है।

प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्त्ता ने यह पाया कि भारत सरकार के मानव संसाधन एवं विकास मंत्रालय के सहयोग से संचालित यह योजना महत्वपूर्ण तो है परन्तु इस योजना के सफल क्रियान्वयन में कुछ कठिनाइयां हैं जिनकी जानकारी जिला शिक्षा विभाग के माध्यम से राज्य सरकार को करायी जा सकती है। ताकि उन कठिनाइयों का निवारण हो सके और इस योजना का सफल क्रियान्वयन हो सके।

संदर्भ ग्रंथ

श्रीवास्तव, डी.एन., (2005); *अनुसंधान विधियां,* आगरा : साहित्य प्रकाशन

राय, परसनाथ, (2002); *अनुसंधान परिचय,* आगरा : लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन

पाण्डेय, के.सी. (2002); *शैक्षिक अनुसंधान,* वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन

कौल, लोकेश (2005); *शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली,* नई दिल्ली : विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि.

सिंह, अरुण कुमार, (2005); *शिक्षा एवं मनोविज्ञान में अनुसंधान,* पटना : मोतीलाल बनारसी दास पब्लिकेशन,

शर्मा, आर.ए. (2000); *शिक्षा अनुसंधान,* मेरठ : लॉयल बुक डिपो

बेस्ट, जॉन डब्लू., (1963); *रिसर्च इन एजुकेशन,* नई दिल्ली : प्रिंटिश हाल ऑफ इंडिया

करलिंगर, एफ. एन., (1969); *फाउंडेशन आफ विहेवियरल रिसर्च,* न्यूयार्क : हाल्ट रिनहर्ट एवं विन्सटन

गुप्ता, एस.पी., (2000); *सांख्यिकीय विधियां,* इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन

गैरेट, हेनरी ई., (1981); *शिक्षा मनोविज्ञान में सांख्यिकीय के प्रयोग,* मुंबई : वकीलफेयर एवं सीमन्स प्रा.लि.

बुच, एम.बी., (1988–1992); *फिफ्थ सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन, वाल्यूम–9, नई दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी.*

सीतारामन, श्रीधर (2005); *स्कूल जाने वाले बच्चों के पोषण स्तर पर मध्याह्न पोषाहार योजना का प्रभाव*

सीमैट, (2005); *उत्तर प्रदेश में मध्याह्न भोजन व्यवस्था एक स्थलीय अध्ययन : इलाहाबाद*

बजट, सर्व शिक्षा अभियान, (2006–07); *जनपद जालौन की प्रगति आख्या,* उरई : कार्यालय बेसिक शिक्षा अधिकारी

सर्व शिक्षा अभियान, (2004–05 व 2005–06); *डी.पी.ई.पी.एम.आई.एस.,* उरई : कार्यालय बेसिक शिक्षा अधिकारी

नेशनल प्रोग्राम ऑफ न्यूट्रीशनल सपोर्ट टू प्राइमरी एजूकेशन (दिसंबर 2004); *मानव संसाधन एवं विकास मंत्रालय,* नई दिल्ली

एजुकेशन फार आल, (नवंबर 2005); *मानव संसाधन एवं विकास मंत्रालय,* नई दिल्ली

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 2, अगस्त 2007

शोध टिप्पणी / संवाद

सरकारी तथा गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

अवधेश कुमार यादव*

प्रस्तावना

शिक्षक, शिक्षा प्रक्रिया का प्रमुख अंग होता है। उसके निर्देश के अभाव में समाज ज्ञानार्जन की सही दिशा का अनुसरण नही कर सकता, साथ ही साथ पाठ्यक्रम को सरल तथा बोधगम्य बनाने में शिक्षक की अहम भूमिका होती है, क्योंकि शिक्षक प्रक्रिया को देशकाल से अनुरूप सही दिशा प्रदान करता है। समुदाय को सही दिशा प्रदान करने में एक योग्य शिक्षक की भूमिका प्रमुख होती है। पाठ्यक्रम की समाप्ति से लेकर व्यक्तित्व निर्माण, भावी नागरिकों का प्रशिक्षण तथा उनके व्यक्तित्व के विकास के साथ ही साथ शारीरिक, मानसिक, स्वास्थ्य सजगता एवं सौन्दर्यात्मक विकास तथा सामाजिक समायोजन की योजना भी सम्मिलित है। इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यक्ति निर्माण से लेकर राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में शिक्षक की अहम भूमिका होती है। प्राचीनकाल से हमारे देश में भावी नागरिकों के निर्माण की जिम्मेदारी समाज के शिक्षकों के ऊपर रही है। वर्तमान समय में प्राथमिक शिक्षा, सरकारी तथा गैर सरकारी, दोनों प्रकार की संस्थाओं द्वारा प्रदान की जा रही है जिसमें पाठ्यक्रम और शिक्षा का माध्यम के अनुसार शिक्षकों को उपलब्ध शैक्षिक सुविधाओं एवं अवसर तथा वेतनक्रम में काफी विभिन्नता पायी जाती है। इन्हीं विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हुयी कि क्या सरकारी तथा गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालय

* शिक्षा शास्त्र विभाग, फैजाबाद विश्वविद्यालय, फैजाबाद, उत्तर प्रदेश

के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अंतर है? इसी विचार बिन्दू को सामने रखते हुए प्रस्तुत शोध कार्य सम्पादित किया गया।

समस्य का कथन: प्रस्तुत शोध समस्या पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर तथा देवरिया जनपद के सरकारी तथा गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों पर सम्पादित की गयी है। इस समस्या का प्रारूप निम्नवत् है:

सरकारी तथा गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

शोध कार्य का उद्देश्य: इस शोध समस्या के निम्नलिखित उद्देश्य है:

1. सरकारी तथा गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. सरकारी तथा गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के शहरी तथा ग्रामीण शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. सरकारी तथा गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के महिला तथा पुरूष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध कार्य की परिकल्पना: उपरोक्त शोध कार्य को सम्पादित करने हेतु निम्न शून्य परिकल्पनाओं की संरचना की गयी है:

1. सरकारी तथा गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्यसंतुष्टि एक समान है।
2. सरकारी तथा गैर सरकारी महिला शिक्षकों की कार्यसंतुष्टि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
3. सरकारी तथा गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के शहरी तथा ग्रामीण शिक्षकों की कार्यसंतुष्टि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध विधि: प्रस्तुत शोध कार्य विवरणात्मक अनुसंधान के अंतर्गत सर्वेक्षण प्रकार का अनुसंधान है। इस प्रकार के अनुसंधान में वर्तमान समय में चल रही घटनाओं

तथा वस्तुस्थिति का अध्ययन सर्वेक्षण के आधार पर प्राप्त आंकड़ों के द्वारा किया जाता है।

जनसंख्या तथा प्रतिदर्श: प्रस्तुत शोध कार्य की जनसंख्या पूर्वी उत्तर प्रदेश के देवरिया तथा गोरखपुर जनपद के समस्त प्राथमिक विद्यालय के अध्यापक है।

न्यादर्श तथा प्रतिदर्श: इस शोध कार्य को सम्पादित करने के लिए पूर्वी उत्तर प्रदेश के देवरिया तथा गोरखपुर जनपद का चयन प्राइक्टर विधि द्वारा की गयी है। जो निम्न सारणी में दिया गया है।

तालिका-1

क्र. सं.	**जिला**	**सरकारी प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक**		**गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक**		**योग**
		पुरुष	**महिला**	**पुरुष**	**महिला**	
1.	देवरिया	120	96	102	88	400
2.	गोरखपुर	80	104	98	112	400
		200	200	200	200	800

प्रस्तुत उपकरण तथा सांख्यिकी:-

उपकरण:- सरकारी तथा गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि मानने के लिए जांच सूची की संरचना की गयी है जो गो. वि. विद्यालय के प्रो. एन. के. लाल एवं बी.बी. पाण्डेय द्वारा निर्मित है। इसके द्वारा सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों ही तरह के शिक्षकों के कार्य का अध्ययन किया गया है।

सांख्यिकीय उपकरण:- सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु मध्यमान क्रान्तिक अनुपात तथा प्रमाणित विचलन का प्रयोग किया गया है।

आंकड़ों का विश्लेषण तथा व्याख्या:

व्याख्या: सरकारी तथा गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष शिक्षकों की कार्यसंतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी जिसका

तालिका-2

सरकारी तथा गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालय के पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

क्रमांक	N	M	Sd	SEd	CR	.05	.01
सरकारी पुरुष शिक्षक	100	185.6	42.2	9.35	0.85	नहीं है	नहीं है
गैर-सरकारी पुरुष शिक्षक	100	177.6	51				
	200	90.8	23.3				

तालिका-3

सरकारी तथा गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालय के महिला शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

क्रमांक	N	M	Sd	SEd	CR	.05	.01
सरकारी महिला शिक्षक	100	185.8	36.8	3.37	2.05	है	नहीं है
गैर-सरकारी महिला शिक्षक	100	192.8	43.6				
	200	94.65	20.1				

मान 0.85 प्राप्त हुआ जो सार्थकता के .01 स्तर पर सार्थक नहीं है। अर्थात् सरकारी तथा गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालय के पुरूष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि सार्थकता के .01 स्तर पर एक समान है। इनमें कोई अंतर नहीं है।

उपरोक्त की भांति सरकारी तथा गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालय की महिला शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी। गणना से प्राप्त क्रान्तिक अनुपात का मान 2.05 प्राप्त हुआ है जो .05

तालिका-4

सरकारी तथा गैर-सरकारी प्राथमिक विद्यालय के महिला एवं पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

क्रमांक	N	M	Sd	SEd	CR	.05	.01
सरकारी तथा गैर-सरकारी पुरुष शिक्षक	200	908	23.3	4.34	0.88	नहीं है	नहीं है
सरकारी तथा गैर-सरकारी महिला शिक्षक	100	192.8	43.6				

स्तर पर सार्थक है तथा .01 स्तर पर सार्थक नहीं है। अत: हम कह सकते हैं कि 95 प्रतिशत स्थितियों में सरकारी तथा गैर सरकारी महिला शिक्षकों की कार्य संतुष्टि एक समान है।

इसी प्रकार सरकारी तथा गैर सरकारी महिला एवं पुरूष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी जिसका मान 0.88 प्राप्त हुआ है जो सार्थकता के .01 स्तर पर सार्थक नहीं है।अर्थात सरकारी तथा गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरूष शिक्षकों की कार्यसंतुष्टि में कोई सार्थक अंतर नहीं है। बल्कि दोनों समूहों की कार्य संतुष्टि एक समान है।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 2, अगस्त 2007

शोध टिप्पणी/संवाद

सूचना एवं संचार तकनीक आधारित शिक्षण में अध्यापक सशक्तीकरण

सुशील कुमार राय* और श्रुति आनन्द**

अध्यापक सामाजिक विकास का सूत्रधार माना गया है। यह मान्यता प्रजातंत्री समाज में जितनी सत्य है, उतनी ही नियंत्रित समाज में भी। सभ्यता के प्रारम्भ से ही दुनिया के सभी देशों की शिक्षण व्यवस्था में अध्यापक की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

सूचना एवं संप्रेषण में प्रक्रिया मानव समाज में आदिकाल से ही विद्यमान रही, यह सामाजिक अंत:क्रिया वाणी, भाषा, संकेतों एवं लिपि के माध्यम से सम्पन्न होती रही है, मानव समाज में विकास यात्रा के दौरान प्रगति के रास्ते तलाशे एवं इसका महत्वपूर्ण पड़ाव 16वीं शताब्दी के बाद से आरम्भ हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरकाल तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में विश्व के ज्ञान-क्षितिज पर वैज्ञानिक युग का अवतरण हुआ जिसके परिणामस्वरूप शिक्षक-शिक्षा का सूत्रपात हुआ।

''बलस्य मूलं विज्ञानम्''
(विज्ञान ही बल का आधार है)

बीसवीं (20वीं) शताब्दी के अर्द्धशतक तक सूचना एवं जनसंचार तकनीकियों का प्रार्दुभाव हुआ जिसमें रेडियो, टेलीफोन, टेलीप्रिन्टर, समाचार पत्र-पत्रिकायें, सिनेमा, वायरलेस आदि। 1960 के दशक के बाद विश्व में सेटेलाइट की शुरुआत हुई तो जनसंचार माध्यमों की नई-नई तकनीकियों का मार्ग प्रशस्त हुआ। मुख्य रूप से

* शोध छात्र, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी
** प्रवक्ता, ईश्वर शरण डिग्री कालेज, इलाहाबाद

टेलीविजन, कंप्यूटर, माइक्रोचिप्स, मोबाइल फोन, टेलीटेम्स, माइक्रोतरंगें एवं साफ्टवेयर से संबंधित इन्टरनेट, डब्लू.डब्लू.डब्लू. का विशेष प्रयोग हो रहा है। इन आश्चर्य आविष्कारों के कारण सूचना एवं संचार तकनीक स्वतंत्र विद्या के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है और इनका नया नामकरण आई.टी. युग हो गया है।

मानव जाति के इतिहास में पर्सनल कंप्यूटर बीसवीं सदी की सबसे बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है। कंप्यूटर के अविष्कार ने इंसान के जीवन के हर पहलू को प्रभावित किया, संचार क्रांति में इससे बड़ी भूमिका शायद ही किसी की रही हो। इंटरनेट तो सिर्फ 16 वर्ष (साल) पहले ही आया। आज जिस डिजिटल युग में हम हैं। वह कंप्यूटर की ही देन है। दूसरे पक्ष को देखें तो जीवन के सामाजिक और आर्थिक पक्ष को भी कंप्यूटर ने बदल डाला है। अगर आज कंप्यूटर नहीं होता तो संचार क्रांति शायद ही अपने चरम पर हो पाती और न ही दुनिया वैश्वीकरण देख पाती।

बर्नर और ली (1989) ने www की शुरुआत की और इंटरनेट की क्रांति यही से शुरु होती है। आज शिक्षा के स्वरूप में अंतरिक्ष विज्ञान, मौसम विज्ञान, जैवप्रौद्योगिकी, सूक्ष्म जीव विज्ञान एवं अध्यापक शिक्षा में विशेष रूप से पाठ्यक्रम में स्थान रखा गया है।

अध्यापक सशक्तीकरण आधारित शिक्षण में अनुदेशनात्मक तकनीक से संबंधित सिद्धांत महत्वपूर्ण प्रभाव दिखा सकते हैं। रेगुलेथ एवं नेल्सन (Reigeluth and Nelson (1997) ने अनुदेशन तकनीकी पर आधारित अनुदेशन की मूलभूत सिद्धांत प्रदान किया है जो वैज्ञानिक दृष्टि से प्रमाणित भी है। इसका उपयोग अनुदेशनात्मक नीतियां तथा युक्तियों के लिए सफलतापूर्वक विभिन्न अनुदेशनात्मक सिद्धांतों पर होता है। ये प्राथमिक विधि एक प्रकार के अधिगम से दूसरे में विभिन्नता प्रदान करती है। उहाहरण के तौर पर सभी अध्यापन में लेकिन सामान्य कौशल (skill) में कहना (Tell), दिखाना (show) एवं करना (do) सामान्यीकरण, प्रयोग प्रदर्शन, अभ्यास तथा मूल्यांकन (generality, demostration and practice with feedback) के मूलभूत विधि से कार्य करती है, साथ ही गुणात्मक अनुदेशन को बढ़ावा देती है।

एम. सिहं (1993) ने कंप्यूटर को स्कूलों में प्रयोग पर वाराणसी के 180 अध्यापकों (जिनमें प्राइमरी से लेकर सेकेण्डरी स्कूल तक के अध्यापक थे) पर एक अध्ययन किया जिसमें पाया गया कि महिला अध्यापकों ने, पुरुष अध्यापकों की अपेक्षा स्कूल में कंप्यूटर के प्रयोग हेतु अपनी अधिक राय व्यक्त की।

एस. थान्गासामी और नारायनासामी (2001) – तमिलनाडु में शिक्षक–प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण में कंप्यूटर के प्रयोग के संदर्भ में अध्ययन किया जिसका उद्देश्य था– क्या जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान या शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में अध्यापकों द्वारा किस सीमा तक कंप्यूटरों का प्रयोग किया जाता है। इस संबंध में 326 अध्यापकों का पादर्श लिया गया था जिनका प्रबंधतंत्र सरकारी था जबकि 127 अध्यापकों को शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों से लिया गया था जिनका प्रबंधतंत्र प्राइवेट था। प्रश्नावली विधि से प्रश्न पूछे गये थे। परिणाम निम्नानुसार पाया गया :

1. डायट के अध्यापकों ने उच्च कंप्यूटर कौशल की मांग की जबकि शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थानों के अध्यापकों ने ऐसा कुछ मांग किया।
2. डायट के 52 प्रतिशत शिक्षकों ने कंप्यूटर के प्रयोग का पूर्व सेवा प्रशिक्षण हेतु संस्थानों में प्रयोग पर बल दिया जबकि टी.टी.आई. के 45.7 प्रतिशत शिक्षकों ने कंप्यूटरों को पूर्व सेवा प्रशिक्षण में उपयोग करने पर बल दिया।

अध्ययनोपरान्त 27.9 प्रतिशत डायट के अध्यापकों ने कंप्यूटरों को कभी–कभी इस्तेमाल पर बल दिया। इसके बावजूद भी अध्यापकों का एक बड़ा हिस्सा ने जोर दिया कि ऐसे संस्थानों में कंप्यूटरों का प्रयोग कभी–कभार होना चाहिए।

स्टेटिकल आउट लाइन आफ इंडिया (2002–03) में उपलब्ध आंकड़ों का सामान्यीकरण कर उसकी विवेचना से स्पष्ट होता है कि कंप्यूटर का यू.एस.ए. में सर्वाधिक तथा बांगलादेश में न्यूनतम प्रयोग किया जाता है। इन्टरनेट का यू.एस.ए. में सर्वाधिक तथा मिस्र में न्यूनतम प्रयोग किया जाता है। जबकि भारत में कंप्यूटर का प्रयोग 1 हजार व्यक्तियों (सन् 2000) तक 4.5 प्रतिशत जबकि 10 हजार व्यक्तियों पर इन्टरनेट (2001) में 0.8 प्रतिशत ही लोग करते हैं। जबकि मोबाइल फोन 4 प्रतिशत (2000) फैक्स मशीन (1999) 0.2 प्रतिशत ही प्रयोग कर रहे हैं।

सामाजिक आर्थिक एवं तकनीकी परिवर्तनों के कारण अध्यापन का स्वरूप भी बदल रहा है ऐसे में अध्यापक एवं प्रशिक्षण संस्थानों को कक्षा-कक्ष शिक्षण की संभावनाओं की दूरदर्शिता को अच्छी तरह से समझना होगा। वर्तमान समय में इस दिशा में इंटरनेट और इंटरएक्टिव मल्टीमीडिया महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। सूचना सदृष्य बहुमाध्यम जैसे- एल.सी.डी. वर्चुअल कक्षाएं और ऑनलाइन टीचिंग ने नीरस तथा उबाऊपन शिक्षण का स्थान ले लिया है एवं साथ ही भौगोलिक दृष्टि से अध्यापक तथा अध्यापन के मध्य दूरी भी बढ़ा दी है।

विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षक-शिक्षा विभाग के प्रशिक्षक इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यम के प्रति जागरूक हैं एवं भरपूर उपयोग भी करते हैं। लेकिन इस दिशा में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद की भूमिका स्पष्ट नहीं प्रतीत हो रही है। अध्यापक प्रशिक्षण के नये-आयाम को सुनिश्चित करने एवं प्रभावशाली शिक्षक तैयार करने में सूचना एवं संप्रेषण प्रौद्योगिकी आधारित प्रशिक्षण अपना विशेष योगदान प्रदान कर रही है लेकिन भारतीय संदर्भ में देखें तो स्पष्ट है कि उतनी प्रगति शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थानों में नहीं, जितनी होनी चाहिए।

शिक्षण-प्रशिक्षण में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद की भूमिका

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली (1998) के अंतर्गत बी.एड. एवं एम.एड. कक्षाओं की मान्यता प्रदान करने हेतु शैक्षिक तकनीकी प्रयोगशाला उपकरण के मानक बनाये गये हैं। साथ ही राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद के क्षेत्रीय समितियों के द्वारा शिक्षक-शिक्षा विभाग के अंतर्गत पाठ्यक्रमों की मान्यता एवं सीटों के बढ़ाने हेतु निरीक्षण मंडल की रिपोर्ट प्रोफार्म (संस्थानों के निरीक्षण के लिए) के पैरा 13(13.3) में शैक्षिक तकनीकी प्रयोगशाला की उपलब्धता के अंतर्गत एवं भाषा प्रयोगशाला की उपलब्धता (13.4) में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि आई.सी.टी. आधारित अनुदेशनात्मक सुविधाएं उपलब्ध होनी चाहिए।

इसके अनुसार (13.3) में निम्नलिखित सामग्री उपलब्ध होना जरूरी है:

पैरा		संभावित सुविधाएं हो सकती है।
13.2.1	डिजीटल लर्निंग संसाधन सुविधाएं की सुलभता एवं उपयोग	डिजिटल कंप्यूटर (माइक्रो, मिनी, सुपर, मेनफ्रेम, पी.सी.) डिजिटल पेन, डिजिटल डायरी, डिजिटल कैमरा, एम्प्लीफायर
13.2.2	कंप्यूटरों की संख्या तथा सहायक उपसाधन	कंप्यूटर पी.सी.
13.2.3	इलेक्ट्रानिक प्रकाशनों की संख्या	स्टोरेज डिवाइस (सी.डी.-रोम्स) हार्डडिस्क, फ्लापी, मानीटर, कैसेट्स, सी.डी. रोम ड्राइव, डिस्क
13.2.4	इंटरनेट की उपलब्धता	मोडेम डिवाइस, बेसिक फोन से जोड़ना टी.सी.पी./आई पी एवं एच.टी.टी.पी., याहू एच.टी.टी.पी.-अपोलो डब्ल्यू.आई.ए.एस., टेलनेट, गोफर, ई.मेल यूजनेट
13.2.5	ओवर हेड प्रोजेक्टर की उपलब्धता	संख्या-एक
13.2.6	टी.वी. की उपलब्धता	संख्या-एक
13.2.7	वी.सी.आर. की उपलब्धता	वीडियो कैसेट्स
13.2.8	नये कोर्स (पाठ्यक्रम) लेने/ सीटों की संख्या बढ़ाने पर शैक्षिक तकनीकी प्रयोगशाला में अन्य सुविधा उपलब्ध कराना।	उपरोक्त संख्या बढ़ाना
13.2.9	यदि नहीं तो, लर्निंग साफ्टवेयर या सहायक उपकरण के रूप में प्राप्त करना	उपरोक्त संख्या बढ़ाना

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली (1998) के द्वारा निर्धारित मानक के अनुसार शिक्षा संस्थाओं को स्थापित करने हेतु शैक्षिक तकनीकी प्रयोगशाला हेतु बी. एड. पैरा- (3.5.2) में आवश्यक उपकरण रखने का सुझाव दिया है।

आवश्यक सामग्रीः रेडियो-1, टी.वी.-1, आडियो कैसेट रिकार्डर-1, स्लाइड कम फिल्म स्ट्रीप प्रोजेक्टर-1, ओवर हेड प्रोजेक्टर-1, चार्ट, स्लाइड, ट्रांसपेरेन्सीज सामग्री के निर्माण के लिए आर्ट मैटेरियल, वी.सी.आर.-1, एम्प्लीफायर-1, लाउडस्पीकर-2, माइक्रोफोन-2, भरपूर मात्रा में खाली आडियो वीडियो कैसेट्स।

वांछित सामग्रीः स्टील कैमरा-1, वीडियो कैमरा-1, कंप्यूटर पी.सी.-1

संस्था निरीक्षण दल के प्रपत्र के पैरा 13.4 में भाषा सीखने हेतु सुविधाओं की उपलब्धता हेतु भाषा प्रयोगशाला का सुझाव दिया गया है।

शिक्षक-शिक्षा में शैक्षिक तकनीकी प्रशिक्षक के नियुक्ति हेतु सूचना तकनीकी सहायक (पैरा 10.6 (b) - (iv) की संस्तुति की गई है।

भारत के भाग्य का निर्माण कक्षा में हो रहा है, इस कथन की सार्थकता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि भविष्य निर्माण किसके द्वारा किया जा रहा है? शिक्षकों की अहम भूमिका स्वीकारते हुए यह ज्ञात करना भी परम आवश्यक है कि इनके प्रशिक्षण कार्यक्रम का क्या स्वरूप होना चाहिए?

गत कई दशकों से शिक्षक प्रशिक्षण की स्थिति स्थिर-सी हो गई है, कोई नया परिवर्तन, नया प्रयोग, नया अनुसंधान नहीं हो रहा है। वर्षों से चली आ रही परम्परा में केवल औपचारिकता का निर्वाह हो रहा है। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम की यह स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण एवं चिन्तनीय है। अतीत महत्वपूर्ण हो सकता है किन्तु वर्तमान नहीं बन सकता। वर्तमान का निर्माण वर्तमान के तथ्यों से ही होता है। सूचना एवं तकनीकी युग में शिक्षक-प्रशिक्षण के आयातित स्वरूप में ''पानी बाढ़ो नाव में'' के समान अप्रभावी शिक्षकों की बाढ़ ला दी है। किन्तु गुणात्मक स्तर का यह अकाल ''परहस्तंगत धनम्'' के समान किंकर्तव्य-विमूढ़ सा प्रतीत होता है।

एनसीटीई की भूमिका अध्यापक शिक्षा की मान्यता देने तथा तकनीकी प्रशिक्षण के लिए संदिग्ध एवं दिशाहीन प्रतीत हो रही है। प्रबंधतंत्र (स्ववित्तपोषित) के द्वारा जो

शिक्षक-प्रशिक्षण विभाग अन्धाधुन्ध खुल रहे हैं, उनकी कोई दिशा नहीं है, सिर्फ व्यावसायिक दृष्टिकोण है। जहाँ परम्परागत सहायता प्राप्त महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय के प्रशिक्षण विभाग हैं, उन पर भी एनसीटीई एवं अन्य अध्यापक का विशेष प्रभाव नहीं दिखाई दे रहा है। कक्षा प्रशिक्षण में टीचिंग टास्क की प्रकृति नगण्य ही होती जा रही है।

सुझाव

1. दक्षता-आधारित शिक्षण की व्यवस्था प्रशिक्षण विभाग में योग्य प्रशिक्षकों की देखरेख में होनी चाहिए, जिनको आई सी टी का प्रशिक्षण प्रदान किया हो।
2. संप्रेषण अधिगम, मूल्य आधारित एवं वैयक्तिता पर आधारित हो।
3. अध्यापन में अनुदेशिक सामग्री का बहुतायत में प्रयोग किया जाये।
4. सीआईईटी / क्षेत्रीय कालेजों तथा अकादमिक स्टाफ कालेजों में शिक्षा तकनीकी से जुड़े प्राध्यापकों को विशेष स्थान दिया जाये।
5. बी.एड. / एम.एड. की कक्षाओं में आईसीटी आधारित विशेष प्रशिक्षण हेतु पाठ्यक्रम बनाये जायें।
6. समय-समय पर प्रशिक्षण विभाग को संबंधित साहित्य का प्रकाशन एवं संगोष्ठी आयोजन करना चाहिए।
7. एनसीटीई में योग्य एवं अनुभवी शिक्षा तकनीक को स्थान दिया जाए।
8. मूल्यांकन के क्रियान्वयन में कंप्यूटर प्रशिक्षण अनिवार्य बना दिया जाय। कंप्यूटर कॉन्फ्रेंसिंग की सुविधा प्रशिक्षण विभाग में अनिवार्य रूप से दी जाए। सामाजिक विज्ञान जैसे विषय में वैज्ञानिक पाठ्यक्रम को प्रमुख स्थान दिया जाये।

संदर्भ

मर्मर मुखोपाध्याय (2005), *एजुकेशन टेक्नोलॉजी - नालेज ऐसेसमेंट* - शिप्रा प्रकाशन, दिल्ली पृ. 40

रवि प्रकाश पाण्डेय (2005), *वैश्वीकरण एवं समाज* - शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद

एलेक्सिस लिआन, लिआन, एम. (1999), - *फंडामेंटल आफ एन्फारमेशन टेक्नोलॉजी* - लिआन विकास, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

आई.ए.टी.ई.–*टीचर एजुकेशन* (वाल्यूम 39, अंक 2, अक्टूबर 2005)

उमे कुलसुम (2005), *इन्फारमेशन कम्यूनिकेशन टेक्नोलॉजी इन टीचर एजुकेशन* – एच.पी. भार्गव बुक हाऊस, आगरा

परिप्रेक्ष्य (2004 दिसम्बर) – नीपा, नई दिल्ली, पृ.113

एपियर जर्नल आफ एजुकेशन – एसोसिएशन फार द प्रोमोसन आफ एजुकेशनल एक्टीविटीज एंड रिसर्च, इलाहाबाद (वाल्यूम 2, अंक 1, 2002, पृ. 27–29)

एन.सी.टी.ई. नई दिल्ली (1998)– *नार्म्स एंड स्टैन्डर्ड फार टीचर एजुकेशन इन्स्टीट्यूशन,* पृ. 7 (बी.एड.), पृष्ठ–5 (एम.एड.)

टी.आर. शर्मा एवं राजश्री भार्गव (2005) *माडर्न टीचिंग ऐड्स*– एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा

एन.सी.टी.ई. (एन.आर.सी. जयपुर)–*वीजिटिंग टीम रिपोर्ट प्रोफार्म फार इन्सपेक्शन आफ इंस्टीट्यूशन* (अन्डर सेक्शन 15 एनसीटीई एक्ट 1993)–न्यू कोर्स/इनटेक।

स्टेटिस्टिकल आउटलाइन रिपोर्ट (2002–03) – टाटा सर्विस लिमिटेड, डिपार्टमेंट आफ एकोनामिक्स एवं स्टेटिस्टिक्स, मुंबई, पृ. 280

एस.के. कोचर (2004), *मेथड एंड टेकनिक आफ टीचिंग*– स्टर्लिंग पब्लिशर प्रा.लि., नई दिल्ली

प्रेम शंकर राम (सोनकर) – *शिक्षकों प्रशिक्षकों में इलेक्ट्रोनिक जनसंचार माध्यम के प्रति जागरूकता,* शोध पत्र नेशनल सेमिनार आफ टीचर एजुकेशन (12–13 नवंबर 2005) इलाहाबाद

महेशन भार्गव, सैकिया (2005–06), *टीचर इन 21 सेंचुरी,* राखी प्रकाशन, आगरा

डी.आर.डी.ओ. – *रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन* (विज्ञान रेल), दिसंबर–03–अगस्त–40

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 2, अगस्त 2007

शोध टिप्पणी/संवाद

शिक्षक-प्रशिक्षकों में इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यम के प्रति जागरूकता

प्रेम शंकर सोनकर*

आज के वैज्ञानिक तथा तकनीकी युग में शिक्षा जगत में इसके अंतगर्त शैक्षिक तकनीकी का प्रयोग शिक्षक प्रशिक्षक संस्थाओं में किया जा रहा है। जो इनकी स्वायत्तता पर एक उभरता हुआ बिंदु है यदि विज्ञान तथा तकनीकी का शिक्षा क्षेत्र में उचित प्रयोग किया जाये तो शिक्षण अधिगम तथा परीक्षण के क्षेत्र में वांछित परिणाम प्राप्त किये जा सकते है।

विभिन्न विद्वानों में मीडिया को उसके स्वरूप के आधार पर अनेक वर्गों में विभाजित किया है जिसमें श्रवण संबंधी, दृष्टि संबंधी, स्पर्श गति, रंग रेखा-चित्रिय ग्राफिक और फोटोग्राफिक संबंधी माध्यम प्रमुख हैं। आइये उक्त माध्यमों का निम्नांकित पंक्तियों में विवेचन करें :

श्रवण संबंधी माध्यम : ध्वनि टेप (कैसेट), आडियों डिस्क, रेडियों ट्रांजिस्टर(एक पक्षीय प्रसारण माध्यम) इत्यादि श्रवण संबंधी माध्यम कहलाते हैं।

प्रिन्टेड माध्यम : लिखित सामग्री (प्रिन्टेड मैटेरियल) अभिकल्पित सार संग्रह, अखबार, पत्र पत्रिकायें इत्यादि प्रिन्टेड माध्यम की श्रेणी में आते हैं।

आडियों प्रिन्ट : श्रवण एवं प्रिन्टेड माध्यमों के समिश्रण का रूप आडियों प्रिन्ट मीडिया कहलाता है जिसमें विद्यार्थियों के वर्क बुक, आडियों टेप या डिस्क, चार्ट

* वरिष्ठ प्रवक्ता, शिक्षा संकाय (बी.एच.यू.) कमच्छा, वाराणसी

एवं अन्य संदर्भ सामग्री जो आडियों टेप या डिस्क में प्रयोग किये जाते हैं, इस मीडिया के उदाहरण हैं।

प्रक्षेपित स्थिर दृश्यांकन माध्यम : इन माध्यमों में स्लाइड फिल्म स्ट्रीप्स इत्यादि आते हैं जिसमें शब्दिक सूचनायें भी भरी होती है।

ध्वनि प्रक्षेपित स्थिर दृश्यांकन माध्यम : साउण्ड फिल्म, स्ट्रीप आडियों टेप और फिल्म स्ट्रीप्स, साउण्ड स्लाइड सेट (टेप स्लाइड में भरी सूचनाएं) इन माध्यमों के अंतगर्त समाहित किये गये हैं।

गतिमान दृश्यांकन माध्यम : मूक व गतिमान फिल्म इन माध्यमों में वर्गीकृत किये जा सकते हैं।

ध्वनि गतिमान दृश्यांकन माध्यम : गतिमान फिल्म (विडियों रिकार्डेड कार्यक्रम) इन माध्यमों में वर्णित किये जा सकते हैं।

भौतिक माध्यम : वास्तविक वस्तुएं, मेकअप या वास्तविक वस्तुओं के मॉडल्स इत्यादि इन माध्यम में आते हैं।

उपर्युक्त वर्गीकरण को हम सुविधानुसार निम्नाकिंत चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं।

प्रिंट मीडिया : किताबें, मूलग्रन्थ, संरचति ग्रन्थ, अखबार, पत्र-पत्रिकायें इत्यादि।

नान मशीन डिवाइस (माध्यम) : चार्ट, ग्राफ मैप, कट आउट, मानवशरीर के कट आउट, खिलौने गेम फ्लैश कार्ड, मॉडल स्पेशीमेन इत्यादि।

मशीन आपरेटेड डिवाइस : आडियों टेप, विडियों टेप इत्यादि।

मास मीडिया : रेडियों ट्रांजिस्टर, फिल्म , टेलीविजन अत्याधुनिक जन-सम्प्रेषण के माध्यम जैसे-फैक्स, कम्प्यूटर, पेजर, फेसीमिली, इन्मेल, इण्टरनेट इत्यादि।

शिक्षा में मीडिया का संभावित प्रयोग

(1) माध्यम द्वारा छात्रों के अभिप्रेरण का बढ़ाया जाता है, (2)पूर्व सम्पादित कार्यों का पुन:परीक्षण भी माध्यम से किया जाता है (3)नये अधिगम उल्लेखनाओं को जागृति करने में सहायक होता है, (4) विद्यार्थियों के अनुक्रियाओं को उत्तेजित करता है, (5) उपलब्ध सूचना को देशकाल दूरी के अनुसार संशोधन करने में सफलता मिलती है।

आदिकाल में अध्यापक ही सामाजिक माध्यम होता था परन्तु कालान्तर में, अनेक प्रिंट मीडिया के आविष्कार के साथ अनेक दूसरे माध्यमों का प्रयोग भी शिक्षा का विस्तार करने लगा और कक्षाओं में शिक्षण के दौरान अनेक अत्याधुनिक अनुदेशन माध्यमों का प्रयोग बहुतायत किया जाने लगा है।

कक्षा में माध्यम

माध्यमों का या किसी भी अनुदेशन माध्यम का चुनाव करते समय एक अध्यापक को निम्नांकित पांच मूलभूत सिद्धांतों को ध्यान में रखना आवश्यक है जिसकी विवेचना निम्नांकित पंक्तियों में किया जा सकता है:

माध्यम का चुनाव : यह सिद्धांत, अधिगम उद्देश्यों, को ध्यान में रखते हुए माध्यम का चुनाव करने का हिमायती है। अध्यापकों को छात्रों की विशेषताएं उनकी आवश्यकताएं, अभिवृत्तियाँ, संवेगों, उनके भूतकालीन अनुभव, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और उनकी साक्षरता को ध्यान में रखकर माध्यमों का चुनाव करना चाहिए।

तत्परता : कक्षा की स्थिति में मीडिया का चुनाव छात्रों की तत्परता को ध्यान में रखते हुये भी करना चाहिए, ताकि छात्र, माध्यम द्वारा दिये जाने वाले अनुभवों को आत्मसात कर सकें। वरना छात्रों की सहभागिता के आभाव में किसी भी माध्यम का महत्व निष्प्रभावी हो जाएगा।

उचित भौतिक परिस्थितियों का चुनाव : उचित भौतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर माध्यम का चुनाव करना चाहिए और उस दौरान छात्रों की सक्रिय सहभागिता को संगठित किया जाना चाहिए। यदि किसी माध्यम के लिए एक ऐसे अंधेरे कमरे (Dark Room) की आवश्यकता है,तो उसकी व्यवस्था पहले से ही की जानी चाहिए। विभिन्न माध्यमों के लिए अनेक सुविधाओं की आवश्यकता पड़ती है। सुविधाओं का भी ध्यान मीडिया सेलेक्शन में होना चाहिए।

समेकन या अनुवर्तन : माध्यम द्वारा, प्रदत्त सूचनाओं का, छात्रों को अनुसरण करने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए और उनकी प्रतिक्रियाओं के लिए अलग से पेपर सीट दी जानी चाहिए ताकि वे उन पन्नों पर अपनी प्रतिक्रियाएं या टिप्पणियाँ अंकित कर सकें।

मूल्यांकन : अध्यापकों को छात्रों के माध्यम की प्रभावकारिता का सतत मूल्यांकन छात्रों में विशिष्ट अधिगम उद्देश्य की सफलता और उनके निष्पादन के आधार पर किया जाना चाहिए।

इस प्रकार हम कक्षा की स्थिति में प्रभावी सम्प्रेषण, माध्यमों के विधिवत व उचित चुनाव तथा उपर्युक्त सिद्धांतों को व्यवहार में लाकर छात्रों के व्यवहार में इच्छित परिमार्जन और परिवर्तन ला सकते हैं। पाठ योजनाओं में माध्यमों का प्रयोग कर हम प्रभावी सम्प्रेषण कायम कर सकते है। ग्रामीण समुदाय की साक्षरता बढ़ाने में भी माध्यमों का चुनाव कर इसकी सार्थकता सफल सम्प्रेषण में सिद्ध कर सकते हैं।

एम. नारायनासामी (1991) ने कक्षा 6 के लिए तमिल शब्दार्थ सिखाने हेतु वीडियों कार्यक्रम तैयार किया। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि प्रायोगिक समूह ने तमिल शब्दार्थ अधिक सीखे और नियंत्रित समूह अपेक्षाकृत प्रायोगिक समूह से कम शब्द सीखा पाया।

ए.एम. कपाड़िया, पी-एच.डी. शोध प्रबंधक (1992) ने टी.वी. कार्यक्रमों द्वारा स्वयं सीखने के संबंध में एक प्रयोग किया। उन्होंने दो समूह बनाये-प्रायोगिक समूह व नियंत्रित समूह। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि प्रायोगिक समूह ने नियंत्रित समूह से अधिक सीखने की योग्यता हासिल की। उन्होंने अपने अध्ययन में यह पाया कि 70 प्रतिशत छात्रों ने यह बताया कि टी.वी. कार्यक्रम उन्हें स्वयं अधिगम में सहायता प्रदान करता है।

एम. सिंह (1993) ने कम्प्यूटर के स्कूलों में प्रयोग पर वाराणसी के 180 अध्यापकों (जिनमें प्राइमरी से लेकर सेकेण्डरी स्कूल तक के अध्यापक थे) पर एक अध्ययन किया जिसमें उन्होंने पाया कि महिला अध्यापकों ने, पुरूष अध्यापकों की अपेक्षा कम्प्यूटर के स्कूल में प्रयोग हेतु अपनी ज्यादा राय व्यक्त की।

एस. थान्गासाभी और नारायानासामी (2001) ने तमिलनाडु में शिक्षक प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण संस्थानों में कम्प्यूटर के प्रयोग के संदर्भ में एक अध्ययन किया। इस अध्ययन का उद्देश्य था कि क्या जिला- शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डाइट)या शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों (टी.वी.आई) के अध्यापकों द्वारा किस सीमा तक कम्प्यूटरों का प्रयोग किया जाता है। इस संबंध हेतु 326 अध्यापकों का सेम्पल डायट से लिया

गया था जिनका प्रबन्धतंत्र सरकारी था। 127 अध्यापकों को शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों से लिया गया था, जिनका प्रबन्धतंत्र प्राइवेट था। इस अध्ययन में प्रश्नावली विधि से प्रश्न पूछे गए थे। अध्ययन का परिणाम नियमानुसार पाया गया ।

(1) डायट के अध्यापकों ने उच्च कम्प्यूटर कौशल की मांग की, जबकि शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के अध्यापकों ने ऐसा कुछ मांग किया।

(2) डायट के 52प्रतिशत शिक्षकों ने कम्प्यूटर प्रयोग का, पूर्व सेवा प्रशिक्षण हेतु, संस्थानों में प्रयोग पर बल दिया, जबकि टी.टी. आई. के 45.7 प्रतिशत शिक्षकों ने कम्प्यूटरों को पूर्व सेवा प्रशिक्षण हेतु उपयोग करने पर बल दिया।

अध्ययन में यह पाया गया कि 27.9 प्रतिशत डायट के अध्यापकों ने कम्प्यूटरों को कभी-कभी इस्तेमाल पर बल दिया। इसके बावजूद भी अध्यापकों का एक बड़ा हिस्सा ने जोर दिया कि ऐसे संस्थानों में कम्प्यूटरों का प्रयोग कभी-कभार होना चाहिए।

समस्या कथन

शिक्षक-प्रशिक्षकों में इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों के प्रति जागरूकता।

उद्देश्य

1. शिक्षक-प्रशिक्षकों में इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों के प्रति जागरूकता का पता लगाना।
2. शिक्षक-प्रशिक्षकों में इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों का व्यावहारिक जीवन में उपयोगिता ज्ञात करना।

परिकल्पना

1. शिक्षक-प्रशिक्षकों में इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यम के प्रति कोई जागरूकता नहीं है।
2. शिक्षक-प्रशिक्षकों में इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों के प्रति व्यावहारिक जीवन में उपयोगिता में कोई अतंर नहीं है।

प्रस्तुत शोध हेतु वाराणसी मंडल के चार जिसे क्रमश : गाजीपुर, चन्दौली, जौनपुर, वाराणसी के (133) शिक्षकों-प्रशिक्षकों को न्यादर्श के रूप में लिया गया है। दत्तों के

संकलन में उक्त जिलों के महाविद्यालयों व तीन विश्वविद्यालयों को भी सम्मिलित किया गया है। जिसमें पुरूष व महिला शिक्षक प्रशिक्षकों को चयनित किया गया है उनमें भी कला व विज्ञान वर्ग के ही शिक्षक, प्रशिक्षकों को इस शोध हेतु शामिल किया गया है।

उपकरण विवरण

दत्तों के संकलन हेतु इस शोध कार्य में इलेक्ट्रानिक जनसंचार के प्रति शिक्षक-प्रशिक्षण जागरूकता अनुसूची डा. प्रेमशंकर राम, एवं शोध कर्ता दयाराम द्वारा निर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है। इस अनुसूची में कुल (51) कथन दिये गये हैं जो महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों के प्रति जागरूकता से संबंधित है।

प्रश्नावली दो भागों में विभक्त है। इस अनुसूची में कुल (22)कथन इलेक्ट्रानिक जनसंचार के प्रति जागरूकता के मापन से संबंधित हैं एवम् कुल (29) कथन इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों के व्यवहारिक जीवन से संबंधित हैं।

प्रश्नावली/अनुसूची की विश्वसनीयता

शिक्षक-प्रशिक्षकों में इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों के प्रति जागरूकता एवं उनके व्यवहारिक प्रयोग के मापन हेतु जिस प्रश्नावली का निर्माण किया गया है वह सक्षम मापदण्ड है। इसमें कथनों को इस तरह से सजाया गया है कि इससे आप विश्व में व्याप्त इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, जो उपकरण शोध उद्देश्य को पूर्ण रूप से प्राप्त करने में सहायक है साथ ही इन माध्यमों का व्यवहारिक जीवन में कितना प्रयोग शिक्षक-प्रशिक्षक कर रहे हैं, के संबंध में भी कथनों को समाहित किया गया है जिससे संचार माध्यमों का व्यवहारिक जीवन उपयोग का भी मापन संभव है। अत: प्रश्नावली/ अनुसूची उतना ही विश्वसनीय है। प्रश्नावली/ अनुसूची के निर्माणकर्ताओं ने प्रश्नावली की विश्वसनीयता का मापन स्पीलिट हॉफ मेथड से निकाला जो 0.78 प्रतिशत प्राप्त हुआ है।

आँकड़ों का संकलन

शोध परिकल्पना का उद्देश्य शोध योजना, प्रविधि को एक निश्चित मार्गदर्शन एवं स्वरूप प्रदान करना होता है। अत: विस्तृत विवेचनोपरांतयह निष्कर्ष निकाला गया कि

इस प्रकार के शोध हेतु सर्वेक्षण विधि अत्यधिक उपयोगी साबित होगी। यह विधि इसलिये भी प्रस्तुत शोध हेतु उपयुक्त है क्योंकि वर्तमान शोध में इलेक्ट्रानिक जनसंचार के विषय में हम शिक्षक-प्रशिक्षकों में जागरूकता का मापन करने जा रहे है एवम् उनके व्यवहारिक प्रयोग के विषय में जानकारी हासिल करना चाहते हैं। अत: साक्ष्यों के संलग्न हेतु परपजीव कम इन्सीडेन्टल सैम्पलिंग टेकनीक का प्रयोग किया गया है। गिलफोर्ड ने परपजीव सैम्पल को परिभाषित करते हुए कहा है कि यह सैम्पल मनमाने तौर पर लिया जाता है क्योंकि इससे उस न्यादर्श विशेष के बारे में प्रतिनिधिक जानकारी अच्छी तरह से प्राप्त हो जाती है जिसका अध्ययन किया जा रहा है। गिलफोर्ड आर्म कहता है कि इन्सीडिन्टल सैम्पल उस सैम्पल को कहते हैं जो अधिकता से उपलब्ध हो जाता है। यह विधि बहुविधि प्रकार से बहुतायत व गुणात्मक प्रकार से दत्तों का अनेक पहलुओं पर उनकी जटिलताओं की जिम्मेदारीपूर्वक परीक्षण करने में सबसे सफल विधि साबित हुई है।

सांख्यिकी विश्लेषण

आंकड़ों के सांख्यिकी विश्लेषण हेतु सामान्य विवरणात्मक सांख्यिकी के अतिरिक्त निष्कर्षात्मक सांख्यिकी का भी प्रयोग किया गया। इलेक्ट्रानिक जनसंचार के प्रति शिक्षक-प्रशिक्षक जागरूकता का भी प्रतिशत भी ज्ञात किया तथा इलेक्ट्रानिक जनसंचार के प्रति प्रशिक्षकों एवम् प्रशिक्षकाओं में जागरूकता एवम् उनके व्यवहारिक प्रयोग के अन्तरों की सार्थकता को ज्ञात करने हेतु टी.परीक्षण का प्रयोग भी किया गया।

परिणाम एवं विवेचना

इसमें आंकड़ों के विश्लेषण, परिणामों की निष्पत्ति और उसकी विवेचना प्रस्तुत है। परिणामों को उद्देश्यों और परिकल्पनाओं के क्रमानुससार प्रस्तुत किया गया है।

शिक्षक प्रशिक्षकों में इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों के प्रति जागरूकता एवं उनके व्यवहारिक प्रयोग

चयनित प्रशिक्षण महाविद्यालयों एवम् विश्वविद्यालय के शिक्षक प्रशिक्षकों में इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों के प्रति जागरूकता एवम् उनके व्यवहारिक प्रयोग के स्तर को ज्ञात करने हेतु शोधकर्ता ने इलेक्ट्रानिक जनसंचार के प्रति शिक्षक जागरूकता अनुसूची का प्रयोग किया। शोधकर्ता ने चयनित समूहों की सहायता से शिक्षक प्रशिक्षकों के इलेक्ट्रानिक

जनसंचार माध्यमों के प्रति जागरूकता एवम् उनके व्यवहारिक प्रयोग से संबंधित आंकड़े एकत्र किए। इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों के प्रति जागरूकता एवम् उनके व्यवहारिक प्रयोग संबंधी प्राप्तांकों को सारणीबद्ध परीक्षण और प्रतिशत आकलित किये गये। प्राप्त परिणामों को क्रमशः तालिका 1 और 2 में प्रस्तुत किया गया है :

तालिका-1

इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों के प्रति विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय पुरुष शिक्षक-प्रशिक्षकों में जागरूकता के मध्य 'टी' मूल्य

संस्था	N	M	S.D.	't' Value
विश्वविद्यालय	26	17.96	1.18	0.6169
महाविद्यालय	39	16.80	1.55	—

तालिका-1 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों के प्रति विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के पुरुष शिक्षक प्रशिक्षकों में जागरूकता के बीच कोई सार्थक अंतर नहीं है। अतः परिकल्पना एच को स्वीकृत किया जाता है। इससे यह संकेत मिलता है कि विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के पुरुष शिक्षक प्रशिक्षक इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यम के प्रति दोनों ही समान रूप में जागरूक हैं, दोनों वर्ग के शिक्षक-प्रशिक्षक अपने कार्य क्षेत्र में इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों का उपयोग करते हैं।

तालिका-2

इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों के प्रति विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के पुरुष शिक्षक-प्रशिक्षकों में व्यवहारिकता के मध्य 'टी' मूल्य

संस्था	N	M	S.D.	't' Value
विश्वविद्यालय	26	13.19	1.56	1.19
महाविद्यालय	39	13.76	2.51	—

कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका-2 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यम के प्रति विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षक- प्रशिक्षकों में व्यावहारिकता के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है। अत: परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के पुरुष शिक्षक एवं प्रशिक्षक अपने व्यवहारिक जीवन में इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों का भरपूर उपयोग करते हैं। क्योंकि आज के परिवेश में प्रत्येक शिक्षक महाविद्यालय में आये दिन इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों से संबंधित संगोष्ठी एवं सेमिनार आयोजित होते रहते हैं जिससे दोनों समूहों के पुरुष शिक्षक-प्रशिक्षकों का व्यवहार परिवर्तित होता रहता है।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 2, अगस्त 2007

शोध टिप्पणी/संवाद

उत्तराखण्ड में विद्यालयी शिक्षा की वर्तमान स्थिति

नारायण प्रसाद उनियाल*

1950 में लागू भारतीय संविधान में राज्य को निर्देश दिया गया है कि दस वर्ष के भीतर चौदह वर्ष तक के सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य रूप से प्रदान की जाय। इस लक्ष्यपूर्ति हेतु केन्द्र व राज्य सरकारें अभी तक सफलता अर्जित नहीं कर पाई है। ''सर्व शिक्षा अभियान'' के अन्तर्गत वर्ष 2007 तक समाज के सभी वर्गों के लिए गुणवत्ता युक्त प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य निर्धारित किया है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने यह जानने का प्रयास किया है कि उत्तराखण्ड में विद्यालयी शिक्षा (कक्षा 1 से 12 तक) की वर्तमान वास्तविक स्थिति क्या है?

उत्तराखण्ड का वर्णन वैदिक ग्रन्थों में किया गया है। उत्तराखण्ड का इतिहास रामायण और महाभारत से भी पुराना है। यह दो सांस्कृतिक समूहों गढ़वाल तथा कुमायूं में विभक्त है। पुराणों में गढ़वाल को केदारखंड तथा कुमायूं को कुर्मांचल के नाम से जाना जाता है।

उत्तराखण्ड का गठन उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग के जनपदों को मिलाकर 9 नंवबर, 2000 को हुआ। उत्तर में 28°43' से 31°28' तथा पूर्व में 77°32' से 81°00' के बीच उत्तराखण्ड अवस्थित है। पश्चिम में हिमाचल, पूर्व में नेपाल, दक्षिण में उत्तर प्रदेश तथा उत्तर में चीन है। उत्तराखण्ड का कुल क्षेत्रफल 53484 वर्ग किलोमीटर व जनसंख्या 84,79,562 (वर्ष 2001 के अनुसार) तथा इसका भौगोलिक क्षेत्र 88 प्रतिशत पर्वतीय तथा 12 प्रतिशत मैदानी है।

* अंशकालिक व्याख्याता, शिक्षा विभाग, बिड़ला परिसर, श्रीनगर, गढ़वाल, उत्तराखण्ड

उत्तराखण्ड एक विरल जनसंख्या वाला प्रदेश है जिसमें 02 मंडल, 13 जनपद, 49 तहसील, 95 विकासखंड तथा 71 नगर क्षेत्र व 15669 गांव हैं।

उत्तराखण्ड की आर्थिक वृद्धि दर 2.6 प्रतिशत है जो कि राष्ट्रीय वृद्धि दर 5.5 से नीचे है, परन्तु यहां की सारक्षरता दर 72.28 प्रतिशत है जो कि राष्ट्रीय साक्षरता दर 65.83 से अधिक है। यहां हिन्दुओं के प्रमुख तीर्थ बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री व यमुनोत्री प्रमुख रूप से अवस्थित हैं। आदिकाल से ही उत्तराखण्ड शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्र बिन्दु रहा है। द्रोणाचार्य की कर्मभूमि, कालीदास की मेघदूत की रचना यही दर्शाते हैं। भारत के उत्कृष्ट विद्यालय उत्तराखण्ड में अवस्थित हैं। उत्तराखण्ड में साक्षरता राष्ट्रीय साक्षरता दर से अधिक है।

21वीं शताब्दी में शिक्षा विकास का पर्याय है। शिक्षा केवल मनुष्य के ज्ञान तक ही सीमित नहीं है अपितु शिक्षा के स्तर से राज्य/राष्ट्र का विकास आंका जाने लगा है। वर्तमान प्रतिस्पर्धा के युग में प्रत्येक सरकार शिक्षा पर ध्यान दे रही है। शिक्षा को

तालिका-1

शैक्षणिक संस्थाएं (वर्ष जून 2004 के अनुसार)

संस्थाएं	संख्या	सेवित जनसंख्या (प्रति विद्यालय)	छात्र नामांकन		
			बालक	बालिका	योग
प्राथमिक विद्यालय (कक्षा 1-5)	14304	592	536705	520055	1056760
जूनियर हाईस्कूल (कक्षा 6-8)	3557	2383	180107	159583	339690
हाईस्कूल (कक्षा 6-10)	768	4836	118800	98906	217706
इण्टरमीडिएट कालेज (कक्षा 6-12)	1088	8652	199818	171977	371795

स्रोत: शैक्षिक डायरी, शिक्षा निदेशालय, उत्तराखण्ड शासन 2004

नागरिक का मौलिक अधिकार माना गया है। इसलिए बच्चों को अच्छी शिक्षा प्रदान करना सरकार का बुनियादी दायित्व है। क्योंकि यह सर्वविदित है कि राष्ट्र के भाग्य का निर्माण उसके विद्यालयों की कक्षाओं से निर्धारित होता है। जिस प्रदेश का गठन विकास की अवधारणा पर हुआ है, जहाँ 80 प्रतिशत भू-भाग पर्वतीय एवं विकट है वहां विद्यालयी शिक्षा में राष्ट्रीय लक्ष्यपूर्ति हेतु किस प्रकार के प्रयास किये जा रहे हैं, उसका विवरण तालिका-1 में दिया गया है।

तालिका-1 में विद्यालयी शिक्षा की स्थिति यह प्रदर्शित करती है कि पर्वतीय राज्य होने के कारण इसकी अपनी भौगोलिक विषमताएं हैं। शिक्षा को जन सुलभ बनाने तथा प्रत्येक बच्चे की विद्यालय में दाखिला करने के लिए सरकार को और भी सकारात्मक प्रयास करने होंगे। इसी समयान्तराल में उत्तराखण्ड में 1035 प्राथमिक विद्यालय, 780 उच्च प्राथमिक विद्यालय, 1657 शिक्षा गारण्टी केन्द्र, 3350 प्रारंभिक शिशु देखभाल एवं शिक्षा केन्द्र, 302 जूनियर हाई स्कूलों को हाईस्कूलों में तथा 135 हाई स्कूलों का इण्टरमीडिएट कालेज में उच्चीकरण किया गया। इनके अतिरिक्त 13 राजीव गांधी नवोदय विद्यालय एवं 13 कस्तूरबा गांधी महिला विद्यालय प्रत्येक जनपद में एक-एक खोले गये हैं।

तालिका-2

अध्यापक विवरण (वर्ष जून 2004 के अनुसार)

विद्यालय	प्रधानाचार्य/प्रधानाध्यापक		प्रवक्ता/सहायक अध्यापक	
	स्वीकृत	कार्यरत	स्वीकृत	कार्यरत
प्राथमिक विद्यालय	8645	7668	18611	14175
जूनियर हाईस्कूल	2121	1435	8826	8073
हाईस्कूल	536	172	13581	12616
इण्टरमीडिएट	726	312	6941	4003

स्रोत: शैक्षिक डायरी, शिक्षा निदेशालय, उत्तराखण्ड शासन 2004

उपरोक्त तालिका का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि सभी प्रकार के विद्यालयों में स्वीकृत पदों के सापेक्ष कार्यरत शिक्षक/शिक्षिकाओं की संख्या में भारी अन्तर है। इसमें भी अधिकांश शिक्षक/शिक्षिकाएं शहरी क्षेत्रों में ही कार्यरत हैं। दुर्गम व अतिदुर्गम क्षेत्रों की स्थिति चिन्तनीय बनी है। वहां तो प्राथमिक विद्यालय शिक्षा मित्रों पर ही निर्भर हैं।

तालिका-3

विद्यालयी भौतिक सुविधाओं का स्तर (15 अगस्त 2006 के अनुसार)

सुविधाएं	प्राथमिक	जूनियर हाईस्कूल	हाई स्कूल	इण्टर मीडिएट	बी.आर.सी.	सी.आर.सी.
नवीन भवन निर्माण	1695	702	—	106	95	981
पुर्ननिर्माण	1532	402	—	—	—	—
अतिरिक्त कक्ष	5238	—	778	1600	—	—
कंप्यूटर कक्ष	744	—	500	—	—	—
चहारदीवारी	12513	2259	56	25	—	—
प्रयोगशाला	—	—	—	259	—	—
पेयजल व शौचालय	12513	2259	—	762	—	—
कंप्यूटर	—	200	3032	5195	95	981

स्रोतः हमारा प्रयास अनवरत विकास, उत्तराखण्ड शासन 2006

तालिका 3 व 4 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि विद्यालयों की संख्या के अनुरूप अभी भी अधिकांशतः विद्यालय भौतिक सुविधाओं से वंचित हैं। जबकि मध्याहन् भोजन योजना से छात्र नामांकन में प्रदेश शत-प्रतिशत छात्र नामांकन की दिशा में

तालिका-4

मध्याह्न भोजन योजना (15 अगस्त 2006 के अनुसार)

विद्यालय	शिक्षा गारंटी केन्द्र	लाभान्वित बच्चे	व्ययभार करोड़ में	भोजन माताएं	रसोई सहायक
11485	1122	764309	48	11485	2000

स्रोत: हमारा प्रयास अनवरत विकास, उत्तराखण्ड शासन 2004

अग्रसरित हैं, परन्तु यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि राजकीय विद्यालयों में खासतौर पर शहरी क्षेत्र में छात्र नामांकन घट रहा है। इसके विपरीत अभिभावक निजी विद्यालयों में अपने बच्चों की पढ़ाई में रूचि ले रहे हैं। जबकि सरकारी क्षेत्र में कक्षा 1 से 8 नि:शुल्क पाठ्य पुस्तकें वितरित की जाती हैं।

तालिका-5

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (जून 2004 के अनुसार)

अवधि	लागत	आच्छादन	प्राथमिक विद्यालय			शिक्षा गारंटी केन्द्र			ई.सी.सी.ई. केन्द्र	शिक्षा मित्र
			संख्या	प्र. अ.	शिक्षामित्र	संख्या	नामांकित बच्चे	संख्या	बच्चे	
अप्रैल 2000 से मार्च 2005	95-82	06	356	356	712	578	12356	741	20199	388

स्रोत: शैक्षिक डायरी, शिक्षा निदेशालय, उत्तराखण्ड शासन 2004

उपरोक्त तालिका से अवगत होता है कि सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्यपूर्ति हेतु व्यापक प्रबंध किये गये हैं।

तालिका-6 में कंप्यूटर प्रशिक्षण पर रु. 558.03 लाख धनराशि व्यय की गई है। इसमें 1141 राजकीय विद्यालयों में कम से कम 5 कंप्यूटर प्रति विद्यालय दिया गया है। 20,000 अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जा चुका है। इस प्रकार वित्तीय प्रबंधन में सरकार ने सार्थक प्रयास किये हैं।

तालिका-7

शिक्षक/शिक्षिकाओं की उपलब्धता के आधार पर प्राथमिक विद्यालयों की संख्या का विवरण

शिक्षक/शिक्षिकाएं की संख्या	ग्रामीण क्षेत्र में	शहरी क्षेत्र में	योग
0	214	3	217
1	2408	49	2457
2	6585	191	6775
3	1440	163	1603
4	665	159	824
5	591	424	1015
5 से अधिक	565	447	1011
योग	**12466**	**1436**	**13902**
महिला अध्यापिकाओं के विद्यालयों का प्रतिशत	64.45	92.76	67.37

स्रोत: सेवन्थ आल इंडिया एजूकेशन सर्वे 2002, एन सी ई आर टी पब्लिकेशन नई दिल्ली

तालिका-7 एवं 8 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि प्राथमिक शिक्षा में भवनों की स्थिति बहुत चिंतनीय है। सर्व शिक्षा अभियान के बावजूद वर्ष 2002 में 230 प्राथमिक,

तालिका-8
विद्यालय भवनों के स्थिति के अनुसार विद्यालयों की संख्या का वितरण
(सातवें शैक्षिक सत्र सर्वे 2002 के अनुसार)

भवनों की स्थिति	प्राथमिक (1–5)			उच्च प्राथमिक (6–8)			माध्यमिक (1–10)			उच्च माध्यमिक (1–12)		
	ग्रामीण	शहरी	योग	ग्रामीण	शहरी	योग	ग्रामीण	शहरी	योग	ग्रामीण	शहरी	योग
पक्का	11743	1379	13122	2693	500	3193	596	110	706	698	302	1000
आंशिक पक्का	384	42	426	79	16	95	31	1	32	62	5	67
कच्चा	111	5	116	29	0	29	6	0	6	1	0	1
टेंट	7	1	8	2	0	2	0	0	0	0	0	0
खुला स्थान	221	9	230	149	3	152	12	3	15	0	0	0
योग	**12466**	**1436**	**13902**	**2952**	**519**	**3471**	**645**	**114**	**759**	**761**	**212**	**731**
वर्ष 1993 में बिना भवन के विद्यालय	255	0	255	201	0	201	0	0	0	0	0	0
वर्ष 2002 में बिना भवन के विद्यालय	228	10	238	151	3	154	12	3	15	0	0	0

स्रोत : सेवन्थ आल इंडिया एजुकेशन सर्वे, 2002, एन सी ई आर टी पब्लिकेशन नई दिल्ली

152 उच्च प्राथमिक एवं 15 माध्यमिक विद्यालय बिना भवन के थे। जबकि ग्रामीण क्षेत्र के 214 प्राथमिक विद्यालयों में एक भी शिक्षक नहीं है। यह स्थिति इसलिए आती है क्योंकि शिक्षक/शिक्षिकाएं नियुक्ति के पश्चात ग्रामीण क्षेत्र से अपना स्थानान्तरण शहरी या सुगम क्षेत्र में करवा देते हैं क्योंकि यहां पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण भौगोलिक कठिनाइयां होती हैं। दुर्गम ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षकों के नियुक्ति के पश्चात ठहराव की कोई स्पष्ट नीति नहीं है। शिक्षकों के स्थानान्तरण में भ्रष्टाचार एवं राजनैतिक पहुंच का बहुत अधिक प्रयोग होता है।

उत्तराखण्ड में कक्षा 1 से 12 तक की शिक्षा का एकीकरण/राजकीयकरण किया जा चुका है। सभी शिक्षकों को केन्द्रीय शिक्षकों के अनुरूप वेतन दिया जा रहा है। राजकीयकरण के फलस्वरूप उत्तराखण्ड का नवीन संगठनात्मक स्वरूप अस्तित्व में आया है जो निम्नांकित है :

निदेशालय स्तर

महानिदेशक	— 01
निदेशक (बेसिक एवं माध्यमिक)	— 02
संयुक्त निदेशक (बेसिक एवं माध्यमिक)	— 02
संयुक्त शिक्षा निदेशक	— 03
उपनिदेशक	— 08
निदेशक एस सी ई आर टी	— 01
अपर निदेशक परिषदीय परीक्षा	— 01

मंडल स्तर

अपर निदेशक (प्रति मंडल एक)	— 02
संयुक्त शिक्षा निदेशक (प्रशासनिक) (प्रति मंडल एक)	— 02
संयुक्त शिक्षा निदेशक (अकादमिक एवं अनुश्रवण (प्रति मंडल एक)	— 02

जनपद स्तर

जिला शिक्षा अधिकारी (प्रति जनपद एक)	—	13
अपर शिक्षा अधिकारी (बेसिक) (प्रति जनपद एक)	—	13
अपर जिला शिक्षा अधिकारी (माध्यमिक) (प्रति जनपद एक)	—	13

विकासखंड स्तर

विकासखंड शिक्षा अधिकारी पदेन वरिष्ठतम् प्रधानाचार्य	—	95
उप विकासखंड शिक्षा अधिकारी	—	95

न्याय पंचायत स्तर

क्षेत्र शिक्षा अधिकारी पदेन वरिष्ठतम प्रधानाचार्य	—	676

विद्यालयी शिक्षा में चुनौतियां

शिक्षा के प्रसार और विस्तार में अब तक सरकार की ओर से ही प्रयास किये गये हैं। ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि सरकार के ये सभी प्रयास पूर्णत: सफल नहीं हो रहे हैं क्योंकि जनता शिक्षा में अपनी भूमिका का निर्वहन नहीं कर पा रही है। शिक्षा में समाज की सहभागिता बनाने के लिए शिक्षा की व्यवस्था, प्रक्रिया और प्रबंधन में विकेंद्रीकरण की आवश्यकता बढ़ानी होगी। विद्यालयी शिक्षा में लक्ष्यपूर्ति हेतु अनेक चुनौतियां हैं जिनका विवरण निम्नांकित है :

सामान्य शिक्षा में परिवर्तन कर रोजगारोन्मुख शिक्षा व्यवस्था

नवोदित राज्य की विषम भौगोलिक परिस्थितियां हैं। 80 प्रतिशत आबादी जल, जंगल व जमीन के परम्परागत उपयोग ही करती है। शिक्षा मात्र पुस्तकीय ज्ञान पर आधारित है। मनीआर्डर अर्थव्यवस्था पर पूरी पर्वतीय आबादी निर्भर है। सरकारी उद्योग मैदानी क्षेत्र में ही स्थापित किये जा रहे हैं। ग्रामीण युवा अब भी देश के प्रमुख शहरों में पलायन कर रहे हैं। इसलिए सरकार को हाईस्कूल से आगे के पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को सम्मिलित करना चाहिए। आश्चर्यजनक स्थिति यह है कि उत्तर प्रदेश सरकार के समय जो व्यावसायिक पाठ्यक्रम माध्यमिक स्तर पर संचालित होते थे वे समाप्त किए जा चुके हैं। या फिर समाप्ति के कगार पर हैं। सरकार को शिक्षा पाठ्यक्रम में इस प्रकार

से परिवर्तन करना चाहिए जिससे प्रदेश से पलायन रूक सके और निम्न क्षेत्र में रोजगार की अपार संभावनायें जागृत हो सके।

- पर्यटन
- मत्स्यपालन
- फल उत्पादन एवं संरक्षण
- कुटीर उद्योग प्रशिक्षण
- वन, वानिकी उत्पादन, औषधीय पादप उत्पादन व विपणन, आदि
- औद्योगिक आधारित शिक्षा

अध्यापकों की व्यवस्था

एन सी ई आर टी द्वारा आल इंडिया स्कूल एजुकेशन के सर्वेक्षण के अनुसार पूरे देश में 25,33,205 पूर्ण कालिक प्राथमिक शिक्षकों में 21 प्रतिशत अप्रशिक्षित अध्यापक हैं। इतना ही नहीं, 15.67 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालय शिक्षक विहीन हैं (अमर उजाला, 8 मार्च, 2007)। इस संदर्भ में उत्तराखण्ड कुछ बेहतर स्थिति में है। यहां प्राथमिक शिक्षा में 70 प्रतिशत महिलायें अध्यापन कर रही हैं। इसका परिणाम यह है कि शहरी एवं उसके निकटवर्ती क्षेत्र में प्राथमिक विद्यालयों में 10 से 20 विद्यार्थियों पर 5-6 शिक्षक-शिक्षिकायें कार्यरत हैं जबकि दुर्गम क्षेत्र में 150 से अधिक विद्यार्थियों पर एक ही शिक्षक या शिक्षा मित्र है। यह विकट स्थिति है। इसका निदान किसी योजना के तहत ही हो सकता है।

विद्यालय भवनों की व्यवस्था

अधिकांश विद्यालयों में भवन जीर्णशीर्ण स्थिति में हैं जो भी नवीन भवन हैं या बन रहे हैं उनकी गुणवत्ता का ध्यान नहीं रखा जाता है, विशेषकर प्राथमिक विद्यालयों में। इसका कारण यह भी हो सकता है कि जो धनराशि निर्माण कार्य हेतु दी जाती है, उसमें दूरी एवं स्थान का ध्यान नहीं दिया जाता है। भवन का मानक राजधानी देहरादून में भी वही है और देहरादून से 200 किलोमीटर दूर सड़क मार्ग एवं 40 किलोमीटर पैदल मार्ग, गंगी (टिहरी जनपद) में भी वही है। अत: इसके बजट में योजनागत सुधार अपेक्षित है।

शिक्षा में राजनीतिक हस्तक्षेप

शिक्षा व्यवस्था में विद्यालय खोलना हो या शिक्षकों की नियुक्ति या स्थानांतरण होना हो, सब में राजनीति का बहुत ज्यादा हस्तक्षेप है। राजनैतिक स्वार्थ के लिए मानकों को अलग-रखकर निर्णय लिए जाते हैं। प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था अप्रशिक्षित (शिक्षा मित्र, शिक्षा आचार्यों) के अधीन है जबकि माध्यमिक स्तर पर कम योग्यताधारी शिक्षक बन्धुओं को पिछले दरवाजे से नियुक्त दे दी गई है जो कि इस नवोदित राज्य के लिए कहीं से भी हितकर नहीं है।

शैक्षिक अवसरों की समानता

विभिन्न वर्गों और छात्रों में विद्यमान शैक्षिक विषमताओं के निराकरण के लिए बालिका शिक्षा, अनुसूचित जाति/जनजातियों, शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए अन्य वर्गों तथा क्षेत्र, अल्पसंख्यक वर्ग, विकलांग बच्चों की शिक्षा पर ध्यान देना।

शैक्षिक प्रशासन और प्रबंधन

शैक्षिक प्रशासन और प्रबंधन का सुदृढ़ीकरण और लोकतांत्रिक आदर्शों के अनुरूप गतिशील बनाना। विकेंद्रीकरण तथा सामुदायिक सहभागिता को बढ़ाना। नवंबर 2003 को शिक्षा विभाग का नवीन संगठनात्मक स्वरूप का हर स्तर पर कार्यान्वयन करना।

अन्त में, उत्तराखण्ड में विद्यालयी शिक्षा का विकास अग्रेत्तर दिशा में जारी है। यहां कृषि आधारित रोजगार न्यूनतम हैं। साथ ही सरकारी क्षेत्र में रोजगार के अवसर भी सीमित होते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में रोजगार के नये अवसर पैदा करने, युवाओं की कुशल जनशक्ति के रूप में विकसित करने तथा उद्यमिता, विकास के लिए सरकार को चतुर्दिक प्रयास करने होंगे। एक ओर 6-14 आयुवर्ग के बच्चों को सार्वभौम, अनिवार्य, नि:शुल्क और गुणवत्तायुक्त शिक्षा उपलब्ध करवानी होगी तो दूसरी ओर विज्ञान/तकनीकी/व्यावसायिक तथा कौशलात्मक माध्यमिक शिक्षा इस प्रकार देनी होगी कि प्रदेश के बच्चे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा कर सकें।

संदर्भ

शैक्षिक डायरी, (2004) शिक्षा निदेशालय, उत्तराखण्ड

शिक्षा की ओर बढ़तेक्रम, (2004) उत्तराखण्ड सभी के लिए शिक्षा परिषद

हमारा प्रयास अनवरत विकास, उत्तराखण्ड शासन, अगस्त 2006

अमर उजाला दैनिक समाचार पत्र, 6 मार्च, 2007

डा. जीत राम भट्ट – *भक्ति रसामृतम् एक अध्ययन,* 1999

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 2, अगस्त 2007

चिंतक और चिंतन

दौलत सिंह कोठारी का शिक्षा दर्शन

शारदा कुमारी*

''शिक्षकों की भूमिका यह नहीं है कि वे पाठ्यपुस्तकों के भीतर समाहित ज्ञान और सूचनाओं के वितरक बन जाएँ बल्कि विद्यार्थियों को चरित्र निर्माण और समुदाय की भलाई के लिए ज्ञान के उपयोग की प्रक्रिया की ओर ले जाने वाले प्रेरक बनें। विद्यार्थियों और समुदाय को इस दिशा की ओर ले जाना ही शिक्षक का संपूर्ण जीवन है।''

डी. एस. कोठारी

(29 अक्टूबर, 1988 को शिक्षा विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया के गोल्डन जुबली समारोह को संबोधित करते हुए।)

प्रो. दौलत सिंह कोठारी जो डी. एस. कोठारी या फिर 1964-66 के शिक्षा आयोग के अध्यक्ष के रूप में अधिक जाने जाते हैं, एक महान शिक्षाविद् और उत्कृष्ट कोटि के वैज्ञानिक थे। विद्यालयी शिक्षा के प्रारंभिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर के भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में उनका योगदान जगजाहिर है और सभी के द्वारा सराहा जाता है। वे भारत के रक्षा विज्ञान के बुनकर या यूँ कहिए कि निर्माता के रूप में भी अधिक जाने जाते हैं।

भारत 15 अगस्त 1947 को आजाद हुआ। आजादी के तुरंत बाद 1948 में जम्मू और कश्मीर में पाकिस्तान के अनाधिकृत प्रवेश ने पं. नेहरू को रक्षा संबंधी सेवाओं की ओर ध्यान देने के लिए विवश किया। वे जानते थे कि भारत अभी औद्योगिक व तकनीकी विकास, रक्षा अनुसंधान, वैज्ञानिक शोध एवं अनुसंधान में अभी बहुत पीछे है। उन्हें एक ऐसे वैज्ञानिक सलाहकार की जरूरत थी जो उन्हें रक्षा संबंधी मामलों में तो

* वरिष्ठ प्रवक्ता, जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान (डाइट) आर.के. पुरम, नई दिल्ली

सलाह दे ही सके साथ ही देश के औद्योगिक, तकनीकी और शैक्षिक विकास के लिए सही दिशा निर्धारण में मदद कर सके। इस महत्वपूर्ण जरूरत को पूरा किया डॉ. डी. एस. कोठारी ने। 1948 में वे रक्षा मंत्री के पहले (प्रथम)वैज्ञानिक सलाहकार नियुक्त हुए। उस समय वे दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर कार्यरत थे। उनका वैज्ञानिक नजरिया इस बात को भाँप चुका था कि शैक्षिक प्रगति के बगैर विज्ञान की उन्नति संभव नहीं। इसलिए उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण पर जोर दिया और शिक्षा को हाथ के काम से जोड़ने की जरूरत को महसूस किया।

''शिक्षा सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिवर्तन का अचूक एवं सशक्त जरिया है। राष्ट्र को विकास की राह पर ले जाने वाला शैक्षिक परिवर्तन तभी संभव है जब शिक्षा को उत्पादकता से जोड़ा जाए।''

इसी भावना के रहते उन्होंने सामान्य शिक्षा में 'कार्यअनुभव' जैसे विषय की जोरदार अनुशंसा की। उनके अनुसार कार्यअनुभव ही वह विषय है जो भावी नागरिकों को स्वयं की गरिमा और महत्व पहचानने में मदद कर सकता है साथ ही खुद के उन्नयन और समाज सेवा करने की इच्छा को मजबूती प्रदान कर सकता है। सीखने-सीखाने की प्रक्रिया में अवलोकन, जिज्ञासा, प्रयोग के महत्व को स्थापित करने वाले डॉ. कोठारी का जन्म 6 जुलाई 1906 को उदयपुर में हुआ। उस समय उदयपुर राजस्थान के मेवाड़ राज्य की बपौती था। उनके पिता श्री फतेह लाल जी अध्यापक के रूप में कार्य करते थे। 1918 में 38 वर्ष की आयु में ही उनका निधन हो गया।उस समय दौलत केवल 12 वर्ष के थे। अपने तीन भाईयों और एक बहन से बड़े होन के नाते घर की आर्थिक कठिनाईयों को समझना उनके लिए जरूरी था। उनके स्वयं के साहस और लगन तथा माँ की प्रेरणा ने उन्हें आगे बढ़ने से कभी नहीं रोका।

1922 में उन्होंने इंदौर के महाराजा शिवाजी राव हाई-स्कूल से दसवीं की पढ़ाई पूरी की। वहाँसे वे पुनः अपने जन्म स्थान उदयपुर आ गए जहाँ उन्होंने इंटरमीडिएट कॉलेज का नाम रोशन किया राजपूताना बोर्ड में अव्वल स्थान पर आकर। इस परीक्षा में भौतिकी, रसायन और गणित में वे विशेष योग्यता दर्शाने वलो अंक लेकर पास हुए। मेवाडके महाराणा की ओर से उन्हें पचास रू. प्रति माह का वजीफा मिलने लगा। इस तरह उन्हें आगे की पढ़ाई जारी रखने में दिक्कत नहीं हुई उस समय के हिसाब से यह एक लुभावनी रकम थी और दौलत के लिए तो बहुत उपयोगी। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय की ओर रूख किया और यहाँ आकर उन्हें विश्व विख्यात् वैज्ञानिक श्री

मेघनाद साहा का प्रिय विद्ययार्थी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। 1926 में बी.एस. सी. तथा 1928 में एम.एस.सी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। 'वायरलैस' आज की तारीख में जिसे 'इलैक्ट्रोनिक्स' के नाम से जानते हैं, उनका विषय विशेष था। इसी विश्वविद्यालय में उन्हें 'डिमांसट्रेटर' के पद पर कार्य करने का मौका मिला। प्रो. मेघनाद साहा उनके काम, समझ और वैज्ञानिक तत्परता के बोध से बहुत अधिक प्रभावित थे। उनके स्वतंत्र चिंतन करने की क्षमता प्रो. साहा को बहुत भायी जो उन्हें प्रो. साहा के और निकट ले आई।

उन्हें यूनाइटेड प्रोविंस स्टेट सरकार की ओर से यूके के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अध्ययन करने के लिए वजीफा दिया गया। वहाँ से पी एच डी की उपाधि से गौरवान्तित हो अप्रैल 1933 में वे भारत लौटे और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अपने द्वारा रिक्त किए गए 'डिमांसट्रेटर' के पद का कार्यभार पुनः ग्रहण किया। प्रो. साहा की सलाह के मुताबिक उन्होंने मई 1934 में दिल्ली विश्वविद्यालय में रीडर के रूप में कार्य शुरू किया। यहाँ उन्होंने बहुत से उल्लेखनीय कार्य किए जिन्हें विश्वविख्यात वैज्ञानिकों डॉ. होमी जहाँगीर भामा, सीवी रमन, डॉ. साहा, एन. बोगोलुबोव, एस. चन्द्रशेखर पी एम एस ब्लैकेट, एन. बोहर आदि के द्वारा बहुत सराहा गया।

श्री कोठारी के अथक प्रयासों, विज्ञान और विज्ञान शिक्षा के प्रति लगाव तथा दूरदर्शिता ने विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री मॉरिस ग्वायर को इस सीमा तक प्रभावित किया कि वे भौतिकी विभाग के विस्तार के लिए तैयार हो गए। डॉ. कोठारी की मेहनत सिर्फ भौतिकी विभाग में ही नजर नहीं आ रही थी बल्कि विश्वविद्यालय के पुस्तकालय ने भी अपना श्रृंगार उन्हीं के हाथों से किया। यह सिर्फ इसलिए कि उन्होंने इस बात को गंभीरता से महसूस किया कि अच्छे पुस्तकालय के बगैर अध्ययन-अध यापन और शोध कठिन ही नहीं बल्कि नामुमकिन है। और भी बहुत से महत्वपूर्ण संगठनों के निर्माण में उनका योगदान स्पष्टतयः नजर आता हे, जिनमें उल्लेखनीय हैं-विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् । 1961 से 1971 तक उन्होंने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष पद पर कार्य किया और शोध-अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए सकारात्मक प्रभावशील रणनीतियाँ प्रस्तुत की।

विश्वविद्यालय से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के चांसलर के पद को सुशोभित किया। उनसे पहले इस पद पर रहने

का अधिकार सिर्फ प्रधानमंत्री को ही प्राप्त था। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष पद पर कार्य करते हुए वे भारतीय शिक्षा जगत को नए आयामों और नई दिशाओं की ओर ले गए। उन्होंने स्कूलों से लेकर महाविद्यालयों विश्वविद्यालयों में नवाचारों की महत्ता और आयोजन को तरजीह दी। उनका दृढ़ विश्वास था कि देश का भविष्य अनिवार्यत: शिक्षा पर ही निर्भर करता है, विशेषकर प्रारंभिक शिक्षा के बगैर तो कुछ भी नहीं। विश्वविद्यालयों के बारे में उनका कहना था–

'' विश्वविद्यालय शिक्षकों और विद्यार्थियों का वह समाज है जो पूरी तरह से 'सीखने' की खोज को समर्पित है। यह वह स्थान है, जहाँ विचार, सिद्धांत और आदर्श जन्म लेते हैं। ये वे स्थान हैं जहाँ'जिज्ञासा' को शान्त करने की स्वतंत्रता है, खोजी पृवत्ति को संरक्षण मिलता है, संदेहों के समाधना ढूँढे जाने की तत्परता है, जहाँ ज्ञान और समझ विनम्रता के आवरण तले साथ-साथ चलते हैं और पनपते हैं। यह वह स्थान है जहाँ विद्वता, कौतुहल और आचार व्यवहार की अपेक्षा की जाती है, सम्मान किया जाता है और उन्हें पोषित किया जाता है।''

उन्होंने यह भी कहा कि –

''हमारे विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का स्तर अगर ऊँचा है तो देश के विज्ञान और प्रौद्योगिकी का स्वास्थ्य और स्तर अवश्य ही ऊँचा होगा। यह उसके लिए बैरोमीटर के समान है। हमारे जैसे किसी भी विकासशील देश के लिए विद्यालयी शिक्षा से इतर किसी अन्य चीज या क्षेत्र पर ध्यान देना विशेष लाभकारी न होगा ।'' कहने का तात्पर्य यह है कि प्रारंभिक शिक्षा के महत्व को वे भाँप चुके थे। शिक्षा और देश के विकास को वे पर्याय मानते थे। उनकी यह सोच पूरी तरह से 1964-66 के शिक्षा आयोग जिसे बहुत से लोग कोठारी आयोग के नाम से भी जानते हैं,में झलकती है। इस आयोग की रिपोर्ट 'शिक्षा और राष्ट्रीय विकास'शीर्षक के अन्तर्गत समर्पित की गई। इस रिपोर्ट की अनुशंसाओं , सुझावों और प्रस्तावों ने न केवल भारत को राह दिखाई अपितु अन्य विकासशील देशों ने भी अपनी शिक्षा नीति तय करने में इस आयोग की सिफारिशों पर अमल किया उस रिपोर्ट से उद्धृत है–

''भारत का भविष्य इसके विद्यालयों की कक्षाओं में आकार ले रहा हे। यह केवल शब्दजाल नहीं वरन् वास्तविकता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के संसार में शिक्षा ही वह साधन है जो लोगों की उन्नति, समृद्धि, कल्याण और सुरक्षा के स्तर व गुणवत्ता

को सुनिश्चित करती है। राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के महान उपक्रम की प्रक्रिया में हमारी सफलता निश्चित रूपेण विद्यालयों और महाविद्यालयों से बाहर आने वाले लोगों की संख्या और गुणवत्ता पर निर्भर करती है। हमें ऐसी शिक्षा व्यवस्था की जरूरत है जिसका मुख्य उद्देश्य जीवन स्तर को ऊँचा करना हो''। देश के लिए शिक्षा को निहायत जरूरी समझने का नजरीया उन्हें राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना के नजदीक ले आया।

उन्होंने इस परिषद् के कार्यों, उद्देश्यों और भूमिका को तो आकार दिया ही, साथ ही भविष्य में इस परिषद के विस्तार और उद्देश्यों की कल्पना भी 64-66 के शिक्षा आयोग में स्पष्ट कर दी थी।

प्रो. कोठारी का मत था कि शिक्षा विशेषकर विज्ञान और प्रौद्योगिकी से जुड़ी शिक्ष का राष्ट्रीय विकास और समृद्धि से सीधा और गहरा संबंध है। उन्होंने कहा-

''लोगों के भौतिक स्तर और जीवन की गुणवत्ता के संर्वदून में शिक्षा की एक अहम् भूमिका है। ज्ञान और समझ के साथ -साथ शिक्षा का हमारे जीवन के आतंरिक संतोष से जुड़ाव होना जरूरी है। वह नए-नए सिद्धांतों को प्रतिपादित करने,पोषित करने और उपयोगी सिद्ध करने के अवसर प्रदान करने वाली है। सभी स्तरों पर शिक्षा के तीनों रूपों-निपुणता, युक्ति और मानवीयता में संतुलन होना अनिवार्य होगा। शिक्षा के पहले रूप से यानी कि निपुणता और कुशलता से हमारा तात्पर्य है जीवनोपयोगी सैद्धांतिक और व्यावहारिक ज्ञान से, दूसरा अभ्यास और उपायों से जुड़ाव रखता है, तीसरा जीवन के अर्थ , गुणवत्ता व मूल्यों की ओर संकेत करता है।''

प्रो.कोठारी देश में प्रारंभिक शिक्षा की स्थिति को लेकर बहुत चिंतित थे और उसके उन्नयन को देश की सबसे बड़ी जरूरत व पूँजी के रूप में देखते थे। उन्हीं के शब्दों में -''कोई भी देश चाहे वह आर्थिक विकास के किसी भी चरण में क्यों न पहुँच गया हो, इस आधुनिक युग में यदि अपने नागरिकों को प्रारंभिक शिक्षा सुलभ करवा पाने में असमर्थ है तो इसका तात्पर्य यह है कि उसका आर्थिक विकास बेमानी है और वह देश कुछ भी कर पाने में असमर्थ व अशक्त है। यह उस देश के विकास ही नहीं बल्कि उसके वजूद को कायम रखने के लिए भी अनिवार्य है। निरक्षरता की स्थिति किसी भी देश के लिए बहुत मंहगी पड़ेगी।''उनका यह विश्वास था कि शैक्षिक संस्थानों में उत्कृष्टता लाए बिना किसी भी प्रकार की 'उपलब्धि' संभव नहीं। वे शिक्षा

को उत्कृष्टता और मूल्य समाहित करने के रूप में देखते थे। शिक्षा में उत्कृष्टता से उनका तात्पर्य रूचियों और गतिविधियों के विस्तार सेथा। उदाहरण के तौर पर–अध्ययन शोध, अध्यापन, तकनीकी दक्षताएँ, सामाजिक और नैतिक मूल्यों का विकास, खेलकूद, मनोरंजन आदि।

प्रो.कोठारी का देश की युवा शक्ति में अदम्य विश्वास था और युवा वैज्ञानिकों को प्रोत्साहित करने के लिए उन्होंने हर सीाव यत्न किए। वे विद्यार्थियों की प्रखरता को पहचानने, उन्नयन और पोषित करने के लिए उपयुक्त प्रयत्न करते रहते थे। आज के समय में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् द्वारा आयोजित 'नेशनल टेलेंट सर्च प्रोग्रेम' भी प्रो. कोठारी की ही देन हैं

विज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में अपने अभूतपूर्व योगदानों के फलस्वरूप प्रो.कोठारी को बहुत से पुरस्कारों और सम्मानों से नवाजा गया।

वे 1973–74 में भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के अध्यक्ष रहे। 1962 में दिल्ली में आयोजित भारतीय विज्ञान कांग्रेस के सभापतित्व सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ।

उन्हें1962 में पद्मभूषण तथा 1973 में पद्मविभूषण से अंलकृत किया गया। आजीवन प्रोफेसर की गरिमा के आवरण तले वे विद्यार्थियों, अध्यापकों के संपक में रहे और उन्हें अपने अनुभवों से लाभान्वित करते रहे।

4फरवरी 1993 को उनकी देह पंच तत्वों में विलीन हो गई परन्तु उनकी विचार ध ारा अभी भी शिक्षण उद्देश्यों में जीवंत है– शिक्षा का असली मकसद अपने चारों ओर बिखने चमत्कारी संसार को समझने में निहित है। उनका दर्शन था कि शिक्षा हमें स्वअनुशासन की दिशा की ओर ले जाए और समाज तथा अपने स्वयं के परिवार में कुछ न कुछ योगदान करने के लायक बनाए। इस रूप में शिक्षा आनंददायी, आकर्षक और रामांचकारी होगी प्रो.कोठारी ने एक अध्यापक, वैज्ञानिक व मार्गदर्शक के रूप में अपनी सर्वोत्तम प्रेरणास्पद भूमिका निभाई। उनकी विनम्रता, बौद्धिक योग्यता की विशिष्टता को भारतीय शिक्षा व विज्ञान जगत कभी भुला नहीं पाएगा।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 2, अगस्त 2007

समीक्षा लेख

राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन का इतिहास

अजय कुमार मिश्र*

राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन का इतिहास *संपादक: **देवेन्द्र स्वरूप**, प्रकाशक: **प्रतिभा प्रतिष्ठान**, 1661 दखनीराय स्ट्रीट, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली प्रथम संस्करण: 2007 पृ. 254, मूल्य 300/-*

प्रस्तुत ग्रंथ प्रारंभिक ब्रिटिश सर्वेक्षणों के आधार पर उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ तक प्राचीन भारतीय शिक्षा- व्यवस्था के अवशेषों का विहंगम चित्र; तथा उस समय तक ब्रिटेन में शिक्षा की स्थिति का चित्रण के अलावा राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन के सिद्धांतों एवं प्रयोगों का दस्तावेज है। इस ग्रन्थ के 'विषय प्रवेश' में ही सम्पादक देवेंद्र स्वरूप ने शिक्षा-प्रणाली की दिशाहीनता को उद्घाटित किया है,'स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी हम उसी मूल को दोहरा रहे हैं। एक ओर अंग्रेजों द्वारा प्रवर्तित अर्थ-रचना, न्याय-प्रणाली एवं प्रशासकीय व्यवस्थाओं व संवैधानिक प्रक्रिया का विस्तार करते जा रहे हैं, तो दूसरी ओर इन व्यवस्थाओं की आवश्यकता को पूर्ण करने वाली शिक्षा-प्रणाली की निंदा करके उसमें आमूल परिवर्तन की तोता-रटंन भी करते रहे हैं। प्रत्यक्ष परिणाम यह है कि शिक्षा -पद्धति में कोई परिवर्तन किए बिना हम उसका अंधाधुंध विस्तार किए जा रहे हैं और वह शिक्षा-पद्धति प्रमाणिता पूर्वक, मैकाले के शब्दों में, ऐसी पीढ़ी पैदा कर रही है, ''जो रंग और रक्त से तो भारतीय होगी, किंतु विचारों, आदर्शों और रूचियों में अंग्रेज होगी।''

प्रथम अध्याय 'ब्रिटिश पूर्व भारत में शिक्षा व्यवस्था' में लेखक रामस्वरूप ने शिक्षा संबंधी ब्रिटिश सर्वेक्षण रपटों के आधार पर सिद्ध किया है कि अंग्रेजों की कुटिलता के कारण इसमें बेहद कमी होती गयी। प्रारभिंक पाठशालाओं और मक्तबों से आगे बढ़कर उच्च शिक्षा भी देशव्यापी थी। ब्रिटिश सर्वेक्षण के अनुसार आरंभिक स्कूलों और उच्च विद्यालयों के कुल 1,75,089 छात्रों-छात्राओं में से केवल 42,502 (24.2

* निगम प्राथमिक बाल विद्यालय नं. 1, तिगड़ी, नई दिल्ली-62

प्रतिशत) ही ब्राह्मण थे, 48.8 प्रतिशत शूद्र थे और 15.7 प्रतिशत शूद्रों से भी नीची जाति अर्थात् पारिया थे। निहित स्वार्थ के कारण पादरियों और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने दुष्प्रचार किया (जो अब भी प्रचलित है।) कि भारत में शिक्षा का एकाधिकार ब्राह्मणों को था। इस भ्रान्ति का निवारण करना है। इसी अध्याय में अक्षर-ज्ञान की सरल पद्धति, प्रत्येक भाषा में शिक्षा की उपलब्धता, भारतीय जीवन में शिक्षा का महत्व के साथ-साथ ब्रिटिश सरकार के बढ़ते प्रभाव के कारण शिक्षा-व्यवस्था के ह्रास का बेबाक चित्रण आँखें खोल देने वाला है।

अध्याय- 'ब्रिटेन में शिक्षा की स्थिति (1740-1830)' के अंतर्गत संपादक देवेंद्र स्वरूप ने ब्रिटेन की बदहाल शिक्षा-प्रणाली एवं व्यवस्था का विवरण दिया है। वहाँ की शिक्षा-व्यवस्था बदहाल थी, शिक्षा की सुविधा केवल उच्च वर्ग के थोड़े से लोगों तक सीमित थी। शिक्षा का उद्देश्य विशुद्ध धार्मिक था और शिक्षा- प्रसार में सरकार की कोई रूचि नहीं थी। अध्यापकों और शिक्षा का स्तर निम्न था। हालांकि औद्योगिक क्रांति के परिणाम स्वरूप स्कूली शिक्षा की महत्ता समझ में आने लगी थी। अनेक वर्षों तक चली बहस के पश्चात् ब्रिटिश संसद 1859 में 9 लाख पौंड की मामूली रकम अनुदान राशि के रूप में स्वीकृत थी जबकि इंग्लैड का विश्व व्यापार पर लगभग एकाधिकार हो गया था। लेखक ने शिक्षा-इतिहास के इस ओझल तथ्य को प्रकाश में लाया है कि मद्रास प्रेसीडेंसी के चैपलेन एंडयू बेल ने मद्रास प्रेसीडेंसी में प्रचलित शिक्षा-प्रणाली व्यवस्था की नकल पर इंग्लैंड में ऐसी ही प्रणाली 'मद्रास-पद्धति' की शुरूआत की जिससे वहाँ शिक्षा के श्रेत्र में उन्नति आ गयी। इस प्रकार इंग्लैड भारत का ऋणी देश कहा जा सकता है। 'भारत में ब्रिटिश शिक्षा नीति का विकास' में देवेंद्र स्वरूप ने अंग्रेजों की शिक्षा नीति के विकास को कालक्रम से तीन चरणों, यथा (1)1772-1819 (2)1819-1835 तथा (3) 1835 के पश्चात्; में बाँटा है। इस अध्याय में आद्योपान्त यह तथ्य उभरता है कि अंग्रेजों ने स्व-हितार्थ किस प्रकार भारतीय शिक्षा प्रणाली-व्यवस्था को धवस्त कर दिया जिसका दुष्परिणाम अब तक भारत भोग रहा है।, आठवें अध्याय - 'बंगाल में राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन और श्री अरविंद' में राष्ट्रीय शिक्षा में श्री अरविंद के योगदान की विस्तृत चर्चा है। लेखक ने यह भी विवेचन किया है कि श्री अरविंद कहाँ, कब और कैसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति-प्रयोग से असंतुष्ट भी रहे।

प्रशांत बेदालंकार ने 'राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन में आर्यसमाज' के अतंर्गत स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिक्षा संबंधी दर्शन एवं प्रयोग विश्लेषित किया है। वेदालंकार जी, स्वामी दयानन्द के दर्शन एवं प्रयोग से सहमत नजर आते हैं। इसी कारण वेद-पाठशालाओं, नारी-शिक्षा, गुरुकुल- व्यवस्था एवं चरित्र-निर्माण पर जोर देते हैं। आर्य समाज का

राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन में पहली भूमिका की जानकारी इस अध्याय में मिलती है। चंद्रपाल सिंह ने 'महाराष्ट्र में राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन' में महाराष्ट्र के विद्ववानों का राष्ट्रीय शिक्षा के प्रति समर्पण को सविस्तारपूर्वक प्रकाश में लाया है। संस्थाओं-विद्यापीठों के योगदान की चर्चा भी इसमें समाहित की है। राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन के विभिन्न चरणों में अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली का विकल्प खोजने की जन-भावना की प्रबलता रेखांकित की है।

'राष्ट्रीय शिक्षा के आंदोलन का इतिहास' विषय का मूल्यांकन गांधीजी की इस क्षेत्र में योगदान की चर्चा के बिना अधूरा रहेगा। एतदर्थ लेखक रामशकल पांडेय ने 'गांधीजी के शैक्षिक प्रयोग' के तहत गांधीजी की भूमिका उपस्थित की है। वस्तुत: गांधीजी के शिक्षा संबंधी विचार किताबी ज्ञान पर आधृत नहीं थे। 1909 में ट्रांसवाल नामक स्थान पर 'टॉल्स्टॉय आश्रम' की स्थापना करके उन्होंने उपयोगी शिक्षा-पद्धति खोज निकालने का संकल्प लिया। भारत आने पर साबरमती आश्रम और सेवाग्राम के आश्रम के बच्चों पर शिक्षा प्रयोग किया। स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेने वाले विद्यार्थियों के हितार्थ विभिन्न विद्यापीठों की स्थापना में अहम भूमिका निभायी। विभिन्न अनुभवों एवं प्रयोगों को आत्मासात् करते हुए अप्रैल 1938 में हरिपुरा में सम्पन्न काँग्रेस अधिवेशन में 'बेसिक शिक्षा' का जन्म हुआ। इस शिक्षा के चार प्रमुख सिद्धांत हैं- (1) सर्वभौम अनिवार्य नि:शुल्क शिक्षा (2) मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा (3) उद्योग-केन्द्रित शिक्षा (4) स्वावलम्बन। हालांकि स्वावलम्बक विषय पर काफी बहस- आलोचना हुई। अंतत:'बेसिक शिक्षा' का प्रायोगिक विस्तार होता गया। इसकी समीक्षाएं भी हुईं जिसमें इसे समयानुकूल माना गया। मगर यह दुर्भाग्य है कि स्वाधीन भारत में 'बेसिक शिक्षा' का अंतिम संस्कार सम्पन्न हो गया। इस कारण रामशकल पांडेय जी मर्माहित नजर आते हैं। शिक्षाविद् की पीड़ा अब समस्त भारत की पीड़ा है। स्वयं उनके उद्गार, 'गांधी जी ने हमें अपनी सर्वोत्तम भेंट बेसिक शिक्षा प्रदान की, हमने उसे कुशिक्षा में परिवर्तित कर दिया। हमने गांधीवाद को कलुषित कर दिया।' (पृष्ठ सं. 208) अब पांडेय जी का हृदय पुन: एक गांधी के नेतृत्व की आवश्यकता महसूस करता है।

राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन में काशी विद्यापीठ की अहम भूमिका थी। शिव प्रसाद जी गुप्त के अथक प्रयास के फलस्वरूप यह विद्यापीठ 10 फरवरी 1921 को महात्मा गांधी के कर कमलों से उद्घाटित हुआ। स्वाधीनता, स्वदेश प्रेम, लोक-सेवा, अध्यात्म विद्या की शिक्षा मातृभाषा-माध्यम से देना विद्यापीठ का उद्देश्य था। 1921-47 तक विद्यापीठ का इतिहास राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्ति के इतिहास से गहराई से जुड़ा रहा।

शिक्षाविद् शंकर शरण श्रीवास्तव ने 'काशी विद्यापीठ' की स्थापना से अब तक का संक्षिप्त विवरण दिया है। विद्यापीठ की वर्तमान दुर्दशा से छुब्ध श्रीवास्तव जी ने लिखा है, 'अब यह संस्था एक पतनोन्मुख प्रवाह के समान आदर्शच्युत होकर बस बहती चली जा रही है। (पृष्ठ सं. 219) लेखक ने यह रहस्योद्घाटित किया है कि वह स्वयं 35 अध्यापकों एवं 150 छात्रों से लघु साक्षात्कार किया जिसमें पाया कि विद्यापीठ के छात्र-वर्ग और अध्यापक वर्ग विद्यापीठ के मूलोद्देश्य से भटक चुके हैं।

इस ग्रंथ के अंतिम अध्याय 'अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली के दुष्प्रभाव' में देवदत्त डाभोलकर ने 'सिटिजन्स फॉर डेमोक्रेसी' द्वारा सन् 1978 में प्रकाशित 'हमारी जनता की शिक्षा-व्यवस्था: शिक्षा-विकास (1978-87) के लिए आधार नीति' शीर्षक दस्तावेज प्रस्तुत किया है। सुखद बात यह है कि स्वयं लेखक, देवदत्त डाभोलकर भी उस प्रारूप के हस्ताक्षरकर्त्ताओं में से एक हैं। उस दस्तावेज में अंग्रेजों से पूर्व प्रचलित भारतीय शिक्षा-प्रणाली-व्यवस्था की सराहना है, तो उन के द्वारा आरोपित मगर अब तक प्रचलित शिक्षा प्रणाली की दुर्दशा-दुष्प्रभाव का विवेचन भी है। हालांकि स्वयं लेखक ने उपर्युक्त दस्तावेज को कोई नया आविष्कार नहीं माना है। कारण कि कई दशकों पूर्व गांधीजी ने 'हिंद स्वराज' कृति में इसे स्पष्ट कर दिया था। लेखक डाभोलकर की पीड़ा है कि स्वाधीनता के इतने वर्षों पश्चात् भी हमारे लोकनायक- मार्गदर्शक इस ओर खास ध्यान नहीं देते, बल्कि उन्हीं'(अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली-व्यवस्था) रास्तों पर आगे चलने-चलाने को स्वयं को विवश मानते हैं। अंग्रेजो द्वारा थोपी गयी शिक्षा-प्रणाली राष्ट्र के लिए उचित नहीं है। अतएव राष्ट्र-हितार्थ एक नयी शिक्षा-नीति-निर्माण की आवश्यकता है।

उपर्युक्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन में विद्यापीठों, छात्रों, अध्यापकों की भूमिका उल्लेखनीय थी। कालप्रवाह में बहते हुए ये विद्यापीठ मर्यादा-रहित जरूर हो गए हैं। फिर भी आन्दोलन के काल-खण्ड में प्रस्तुत शिक्षाविदों के शिक्षा-विषयक विचार-दर्शन अब भी प्रासंगिक हैं। वर्तमान शिक्षाविद् उनसे प्रेरणा लेकर इस राष्ट्र के लिए एक नयी शिक्षा नीति का निर्माण कर सकते हैं और राष्ट्र को एक नयी दिशा दे सकते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय शिक्षा व्यवस्था की परंपरा और बाह्य हस्तक्षेप से उसके ह्रास को समझने में बहुत ही सहायक है। यह शिक्षा कर्मियों, शोधार्थियों और विद्यार्थियों के लिए एक उपयोगी पुस्तक है।